



तंत्री

श्री मनलाल गोकुण हास २१६

वर्ष ६

क्रमांक ६५

अंक ५

SHREE MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
KOTA (Rajasthan) - 324001
Ph. 06751 23276252, 23278204-05
249

णमो त्थु णं भगवओ महावीरस्स
 सिरि रायनयरमज्जे, संमीलिय सव्वसाहुसंमइयं ।
 पत्तं मासियमेयं भववाणं मग्गयं विसयं ॥ १ ॥

श्री जैन सत्य प्रकाश

(मासिक पत्र)

[वर्ष ६]

इमांड ६५

[अंड ५

विडम संवत् १९८७ :

वीर संवत् २४६७ :

धर्मोसन १९४२

पा. ५ व हि २ :

भुववार :

जन्मुच्चारी १५

वि-प-य—६-२-न

१ व्यार भावना	:	आ. म. श्री विजययतीन्द्रसूरिज्ञ	: १८१
२ मूलाचार	:	मु. म. श्री दर्शनविजयजी	: १८३
३ श्री देवयंद्रलृष्ट समेतशिखरस्तव	:	श्री भाववालज्ञ नाहटा	: १८८
४ आत्मातुं २३५	:	मु. म. श्री अद्रंदरविजयज्ञ	: १८६
५ महाराव हिन्दुमलज्जी वैद	:	श्री हजारीमलज्जी बांठिया	: १८३
६ श्री अर्जुदक्षिण	:	श्री अंबालाल प्रे. शाह	: १८६
७ 'आभ्यमात' अने 'धृक्षुरसप्रथ'	:	रतिलाल दी. हेसाठ	: २०३
८ आपणी गानपत्रये	:	श्री देशरीयं हीगायं ह अनेवी	: २१०
९ निळनवाह	:	मु. म. श्री धुरंधरविजयज्ञ	: २११
१० श्रीदाणकुलक	:	आ. म. श्री विजयपद्मसूरिज्ञी	: २१५
११ संशोधन समाचार अने स्वीकार	:	श्री पन्नालालज्जी दुगड	: २१६
	:		: २१४

पूज्य मुनिशज्ज्ञने विज्ञप्ति

मासिक गेरवल्ले न ज्ञानां वभनसर पडेंचारी शकाय ते माटे दरेक अंग्रेज्ज
 भिंगानी १३मी तारीख पडेलां पोतातुं सरनामुं लघी जथाववानी पूज्य
 मुनिशज्ज्ञने विज्ञप्ति करीचे छाचे.

द वा८ भ

वार्षिक-ये दृष्टिया



छुट्टु अंड-त्राणु आना।

सुद्रः : कृत्तिकार्य रवज्जसाई झोडारी प्रभाराई-यीमनवाल गोकर्णहास शाह

प्रकाशनस्थान : श्री जैनधर्म संत्यप्रकराक समिति कार्यालय,

जेशंगसाहनी वाढी, धीकंडा रोड, अमदावाद.

सुद्र लूस्थान : सुभाष प्रिन्टरी, सदापेस फोस रोड, अमदावाद

बीराय नीत्यं नमः

श्री कैलासतटप्रकाश

[१५६ ६ १८५ ४५ ५]

पूर्वार्थ—विरचित

भार भावना

संशोधक—आचार्य भद्राराज श्री विजययतीनदस्त्रिलु

- पास ज्ञेयसर पाय नभी, सहगुरुने आधार; अविद्याख जनने हितलाणी, लषुस्त्वुं भावना भार. (१)
 प्रथम अनित्य अशरणप्रथम, एह संसार विद्यार; अेकलपत्र अनित्य तिम, अशुचि आश्रव संलार. (२)
 संवर निर्भर भावना, दोऽन्तर्द्रूप सुमोधि; द्विष्ठ भावना जैनधर्म, धर्मिपरि उरि लियो सोधि. (३)
 रसकूपी—रसलावियो, दोऽह थकी होय हेम; नखुं धिषु भावन सुध हुई, तो परम ३५ लड्हे तेम. (४)
 भाव विना दानादिके, जाणे अद्वेष्टा धान; भावरसांग मिद्यां थकी, तूँ ४८ निदान. (५)
 पल पल छीन्द आउयुं, अंजली जल नखुं एह; चलतह साथे संगलुं, देह सडे तो देह. (६)
 लह अचिंत गलसुं थही, समय सोचाणु आवि; शरणु नहिं निषु वियणुनिषु, तिषु हुवे असरणु भावि. (७)
 शावच्यासुत थरहुयी, ज्ञेर हेखी जम धाडि; संथम शरणुं संथल्यो, धणु उषु कंचणु छांडि. (८)
 धिषु शरणु सुभिया हुवा, श्री अनाथी अणुगार; शरणु लह्या विषु लवडा, धर्मिपरे रुदे संसार. (९)
 धर्म भव भव हुःअ के लह्यां, ते जाणे जगनाथ; भयलंजन भावडहरणु, न मिल्यो अविहुड साथ. (१०)
 तिषु अरण् तुं एकदो, छोड राग गलझांस; सवि संसारी अवस्त्वुं, धरी चित भाव उदास. (११)
 भवसायर धहु हुःभगव, जामणु मरणु तरंग; भमता तंतु तिषु थह्यो, चेतन चतुर भातंग. (१२)

[१८२]

श्री जैन सत्य प्रकाश

[वर्षे ६]

याहे जो छोड़णु लाणी, तव उज लगवत महंत;	
हर करे पर अंधने, जिम जलथी अलंत.	(१३)
मोह वसु मन मंत्रवी, धन्दी मिल्या क्लाल;	
प्रभादमिरा पाय ठरी, वाघी लुप भूपाल.	(१४)
कर्म जंगुरे जडी ठरी, सकृत मालस लीध;	
अशुल विस्त हुरगंधमय, तनगो तहरी हीध.	(१५)
तन छिल्कर ईद्रिय मण, विषय कृज जंबाल;	
पाप क्लुष पाणी लर्दी, आश्रव वहे घडनाल.	(१६)
निर्भल पण सहज सुगत, नाणु विन्नाणु रसाल;	
स्यु अगनी परे पंकजल, चूंच चतुर मराल.	(१७)
शुल मानस मानस करी, ध्यान अमृत रंगरेल;	
नवहल श्रीनवकारपय, करि कमलासन डेल.	(१८)
पातिकपंक पथालने, कर संवरनी पाल;	
परमहंस पहवी लजे, छाडी सयल जंबल.	(१९)
दृढप्रहारि दृढ व्यान धरि, शुणुनिधि गजसुकुमाल;	
मेतारज महनभ्रम वलि, सुकोसल सुकुमाल.	(२०)
धृम अनेक सुनिवर तर्थी, उपशम संवर लाव;	
कुठिन कर्म संधि निर्झर, तिणु निर्झर प्रस्ताव.	(२१)
मन हारु तन नाल कर, व्यानानल सखाव;	
कर्म कटक लेहन लष्टी, गोगा शान चलाव.	(२२)
मोहराय भारी करी, ऊंचा चढी अविदोळ;	
त्रिभुवन भंहिर भांडणी, जिम परमान सुकोळ.	(२३)
वार अनंती झरसियो, छाली-वाटक नाय;	
नाणु विना नवि सालरे, देक्षभ्रमणु लडवाय.	(२४)
स्तनत्रय तिहु भवन में, हुलेला जाणु हयाल;	
आधी रमणु काजे चतुर, आगमवाणु संलाल.	(२५)
परिहर छरिहर देव सवि, सेव सदा असिहंत;	
होषरहित शुरु गणुधरा, सुविहित साधु महंत.	(२६)
कुमति कुदाथड भूझने, श्रृत चारित्र विचार;	
सवज्ज्वल तारणु पोतसम, ते धर्म छियमां धार.	(२७)
तपगछपति विजयदेव शुरु, विजयसिंह सुनिराय;	
शुद्ध धर्महायंक सहा, प्रणुमो तेहना पाय.	(२८)
सोजन नक्षगुणु वरस शुचि, सित तेरसि कुञ्जवार;	
लगतिहेतु भावन लष्टी, जेसलमेसु भजार.	(२९)
आ द्रुति ज्वोर (भारवाड)नी विस्तुतिक धर्मशाणा हस्तकना शानलंडारभांना सातभा	
नांवरना अंडलमांथी एक हस्तलिंगित प्रत उपरथी उतारी अक्षरश अही आपी छे.	

मूलाचार

(दिगम्बर मुनिओंका पक प्राचीन व प्रधान आचारशास्त्र)

लेखक—मुनिराज श्री दर्शनविजयजी

[क्रमांक ६३से क्रमशः]

आवश्यकनिर्युक्तिकी गाथाएं किस प्रकार ली गई हैं उसका नमूना भी देखिएः
सामाइयनिज्जुति वुच्छुं उवपणियं गुरुज्ञेणं ।

आयरियपरंपरण आगयं आणुपुव्वीप ॥ आ० ८७ ॥

आवस्यणिज्जुत्ती बोच्छामि जहाकमं समासेण ॥ मू० २ ॥

आयरियपरंपराप जहागदा आणुपुव्वीप ॥ मू० २, १६ ॥

सामाइयणिज्जुत्ती बोच्छामि जहाकमं समासेण ॥ मू० १६ ॥

पंचविहं आयारं आयरमाणा तहा पभासेता ।

आयारं देसंता आयरिया तेण वुच्चवंति ॥ आ० ९९४ ॥

आयारो नाणाई तस्सायरणा पभासणाओ वा ।

जे ते भावायरिया भावायारो व उत्ता य ॥ आ० ९९६ ॥

जम्हा पंचविधाचारं आचरंतो पभासदि ।

आयरियाणि देसंतो आयरिओ तेण वुच्चदे ॥ मू० ९ ॥

सदा आयारचिद्पूर्व सदा आयरियं चरे ।

अयारमायारवंतो आयरियो तेण उच्चदे ॥ मू० ८ ॥

निव्वाणसहिण जोए जम्हा साहंति साहुणो ।

समा य सब्बभूप्सु तम्हा ते भावसाहुणो ॥ आ० १००२ ॥

चौथे चरणमें विशेष अन्तर है—तम्हा ते सब्ब साधवो ॥ मू० ११ ॥

जो समो सब्बभूरुसु तसेसु थावरेसु य ।

तस्य सामाइयं होइ इइ केवलिभासियं ॥ आ० ७९८ ॥ मू० २६ ॥

सामाइयमिं* उ कय समणो इव सावओ हवइ जम्हान् ।

पण कारणेण बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ आ० ८१ ॥ मू० ३४ ॥

* सामायिकमें वैठा हुआ श्रमणोपासक, श्रमणके समान होता है । यानि सावधरहित बन जाता है । यह उपमा तब ही सच्ची हो सकती है जब कि साधु और श्रमणोपासक ये दोनों यदि उपकरण सहित सवध माने जाएं । इस उपमाको देखकर यह मानना अनिवार्य हो जाता है कि श्रमण वस्त्रका धारक होता है और सावद्य योगसे रहित होता है । वैसे सामायिक-वाला श्रावक भी वस्त्रका धारक व सावद्य योगसे रहित होता है दोनोंमें अन्तर मात्र अनुमतिका ही रहता है । श्रमणोपासकको श्रमण नहीं किन्तु श्रमणोपासक कहनेका यही कारण है । मूलाचारकी आवश्यकनिर्युक्ति

लोगस्सुज्ञोयगरे धम्मनित्थयरे जिणे ।
 अरिहंते कित्तइस्सं चउवीसे पि केवली ॥ आ० च० म० १ ॥
 कित्तियवेदियमहिआ जेप लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
 आहगबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिन्तु ॥ आ० च० म० ६ ॥
 लोगुज्ञोप धम्मतीत्थयरे जिणवरे य अरहंते ।
 कित्तणकेवलिमेव य उत्तमबोहिं मम दिमन्तु ॥ म० ४२ ॥
 दुविहो खलु उज्जोओ नायवो दव्यभावमंजुत्तो ।
 अग्गी दव्युज्जोओ चंदो स्त्रो मणी विज्ञु ॥ आ० १०५९ ॥ म० ५५ ॥
 दंसणनाणचरित्तेसु निउतं जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
 तिसु अत्थेसु निउतं तम्हा ते भावो तित्थं ॥ आ० १०६९ ॥
 दंसणनाणचरित्ते णिज्ञुत्ता जिणवरा दु सव्वेचि ।
 तिहि कारणेहिं जुत्ता तम्हा ते भावदो तित्थं ॥ म० ६३ ॥
 अरिहंति वंदणनमेसणाइ अरिहंति पूअसकारं ।
 तिद्विगमणं च अरिहा अरहंता तेण वुच्चंति ॥ आ० ९२१ ॥ म० ६५ ॥
 कित्तेमि कित्तणिज्ञे सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स ।
 दंसणनाणचरित्ते तवविणयो दंसिओ जेहिं ॥ आ० १०७७ ॥
 कुछ कुछ अन्तर है । म० ४० गा० ६६ ॥
 आहगबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं च मे दिन्तु ।
 किनु हु निआणमेयंति ? विभासा इत्थ कायच्चा ॥ आ० १०९४ ॥ म० ६९ ॥
 समणं वंदिज्ज मेहाची संजयं सुसमाहियं ।
 पंच समियतिगुतं असंजमदुगुङ्ठगं ॥ आ० ११०६ ॥
 स० । स० । पंचमहव्यक्तिलिंदं असंजम जुगंछियं धोरं ॥ म० ९८ ॥
 चत्तारि पडिक्कमणे किइकम्मा तित्रि हुंति मञ्ज्ञाप ।
 पुब्बणहे अवरणहे किइकम्मा चउदस हवेति ॥ आ० १२०१ ॥ म० १०३ ॥
 तेणवि पडिच्छियवं गारवरहिएण सुद्धहियएण ।
 किइकम्मकारगस्सा संवेगं संज्ञां तेण ॥ आ० १२२५ ॥ म० ११३ ॥
 आलोवणमालुंचन-वियडीकरणं च भावविसोही य ।
 आलोइयंमि आराहणाऽनालोप भयणा ॥ आ० १२४३ ॥ म० १२४ ॥
 सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ॥ आ० ॥ म० १२४४ ॥
 मज्जिमयाणजिणाणं, कारणजाए पडिक्कमणं ॥ आ० १२४४ ॥
 स० । पु० । अवराहे पडिक्कमणं मज्जिमयाणं जिणवराणं ॥ म० १२९ ॥

प्रवेताम्बरीय निर्युक्तिके अवतरणरूप ही है; इससे पहिले दिगम्बर सम्प्रदायमें “नवकारमंत्र” व “करेमि भंते सूत्र पाठ” के होनेका प्रमाण नहीं मिलता है। इससे स्पष्ट है कि नवकारमंत्र और करेमि भंते आदि पाठ दिगम्बर समाजकी प्राचीन वस्तु नहीं है।

बावीसे तित्थयरा, सामाइयमंजयं उवदिसंति ।
 क्षेऽओवट्टावणयं पुण, वयंति उसभो य वीरो य ॥ आ० १२४६ ॥ मृ० ४६ ॥
 कंतारे द्रुभिक्खे, आयंके वा महई समुपग्रे ।
 जे पालियं न भग्गे, ते जाणेण पालणा सुष्टु ॥ भा० २५७ ॥ मृ० १४५ ॥
 सायमयंगोमङ्ग्रे तिव्रेत्यसया हवयंति पक्षिवम्मि ॥ आ० १५३० ॥
 अट्टसयं देवसियं कलद्रे पक्षिवयं च तिणिण सया ॥ मृ० १६० ॥
 घोडगलयाइ खेमे कुडे माले अमवरि बहुनियले ॥
 लवंतर* शणउद्दि संजयगवलिणे य वायमकविट्टे ॥ आ० १५४३ ॥
 ॥ मृ० १७१ ॥

आवश्यकाधिकार यह आवश्यकनिर्युक्तिका छोटा अवतरण ही है । अवतरणकारने कतिपय स्थानोंमें जो संस्कार दिया है वह बड़ा भहा लगता है । इतना ही नहीं किन्तु उसमें दिग्मवरीय सान्यता से भी विसंवाद पाया जाता है । जैसा कि—

(१) आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १०६६ व सुलालाचार घडा. गा. ६२ में दाहोपशम, तृष्णा (तृष्णा) लंद व मलशोधन सूप तीन लक्षणसे द्रव्य तीर्थ माना है वह ठीक है ।

(२) बाइमें आ० नि० गा० १०६९ में तीर्थकरोंके द्वारा बताए हुए दर्शन ज्ञान व चारित्रसे लक्षित (प्रवचन) को भाव तीर्थ माना है । द्वादशांगी और श्री श्रमणसंघ ये तीर्थसूप होनेसे उक्त अर्थयोजना ठीक है । मगर श्रीमद् वटेकर्जी श्रुतकेवली श्री भद्रवाहुस्वामीके उस आशयको नहीं समझ सके, अतः उन्होंने मृ० ४० गा० ६३ में लिख दिया की ज्ञान, दर्शन व चारित्रमें जिनेश्वर निर्युक्त हैं अतएव वे भावतीर्थ हैं । यहां श्रीमद् वटेकर्जीने जिनेश्वर भगवानको तीर्थकर न मानकर तीर्थ हो मान लिया । क्या तीर्थकर भगवान् तीर्थ हैं ? या तीर्थकर्ता ?

(२) मूल आवश्यक के चतुर्विंशति स्तव सूत्र-१के आधार पर मृ० गा० ४२का जो पौना भाग बनाया है, सो ठीक है । मगर आ० च० सू० ६२के आधार पर मृ० ४० गा० ४२का जो चौथा चरण बना लिया उसमें गडबडाध्याय बन गया है । आवश्यकमें “उत्तम” विशेषण तीर्थकर के लिये बताया है और तीर्थकर उत्तम क्यों हैं उसकी जांच भी आ० नि० गा० १०६३ में की है । जब सुलालाचार में बोधिसे “उत्तम” विशेषण जोड़ दिया है । नकल करने के जरिप यह ठीक होगा, किन्तु गाथा ६८ में तो उत्तम शब्दसे आवश्यकनिर्युक्ति के अनुसार तीर्थकरके ही गुण गाये हैं । सारांश, यहां

* लंबुत्तर दोष साधु के बच्च होने को सिद्ध करता है । शणउद्दि दोषसे भी सोपकरण साध्वीका होना निर्विवाद हो जाता है ।

[१८६]

श्री जैन सत्य प्रकाश

[वर्ष ६

नकल करनेमें सफाईसे काम नहीं लिया गया। क्यों कि आगे आ० नि० गा० १०९४ व म० ७० गा० ६९ में भी आ० च० स० ६३ की ही अर्थयोजना है।

(३) मूलाचार परि० १ गा० २५ में तो तीसरे आवश्यक (कृतिकर्म-बन्दन) से अरिहत वैग्रह को बन्दन करना माना है। ब्र० हेमचन्द्रने भी स्वार्थादामें तीसरे आवश्यकसे जिनेश्वर आगम धर्म चैत्य और गुरुको बन्दन करना बताया है। किन्तु मूलाचार प. ७ षडा० गा० १४में तो तीसरे आवश्यकमें आचार्यादि सुनियोंको ही बन्दन करना स्वीकार किया है। यह कथन आवश्यक-निर्युक्ति गा० ११५ से असली रूप में ही लिया गया है, अतः यहां श्रेतांश्वर और दिगम्बर दोनोंकी एक मान्यता हो जाती है।

(४) म० ७० गा० १८में उत्तरार्ध बदल दिया है मगर “धीर” शब्दसे छंद पेसा विगड़ गया है कि कृत्रिमता आप ही आप दीखती है।

(५) म० ७० षडावश्यकाधिकार गा० ३६, ३७, ३८, ११९, १३०, १३१, १३२ व १३३में जो वर्णन है वह और किसी दिगम्बर ग्रन्थमें नहीं है। यह वर्णन उत्तराध्ययन-सूत्र व आवश्यकनिर्युक्ति में ही विशदरूप से पाया जाता है। इसीसे सिद्ध है कि श्रीमद् वेदूरक आचार्यने उत्तराध्ययन सूत्रका भी अध्ययन किया। और उत्त० अ० २३ के आधारपर दिगम्बर मतसे विशद्द कथनको छोड़ कर सामाचिक व प्रतिक्रमण का विभिन्न किन्तु अपनेको अनुकूल पाठ रच लिया।

(६) इसके अलावा मूलाचार में और भी विचारणीय बातें मिलती हैं जैसा कि मूला० परि० १ गा० १४ में सुनियोंको ज्ञानोपधि संयमोपधि शौचोपधि व और और उपधिका फरमान है। परि० ३ गा० (गाथा ११४) में उत्तरार्थ के समय उपधि आहार व शरीर के त्यागकी विधि है। परि० गा० १३८ में उपधि व आहार का प्रत्याख्यान करना यानी मर्यादा करना लिखा है और परि० १० गा० २५ व ४५ में उपधि व शर्याकी विशुद्धि बताई है। ब्रह्मरहितपनेमें धर्म माननेवाले दिगम्बर शास्त्रोंमें इस प्रकार उपधिके उल्लेख पाये जाते हैं वह जिनागम व जिनागमानुसार शास्त्रोंके अनुकरणसे। हालांकि संयमोपधि (वस्त्र) शौचोपधि (पात्र) एवं और और उपधि रखना दिगम्बर मान्यतासे विशद्द है।

(७) आ० नि० सामाचिक अध्ययन व गा० १२४६ की वृत्ति में १० कष्ट बतलाये हैं—

आचेलुकोहेसिय सिज्जातररायपिंडकिइकमै ।

वयन्निद्वृपडिक्कमणे मासं पज्जोसवणकप्पे ॥ १ ॥

मूला० परि० १ गा० १८ में भी यही पाठ है सिर्फ प्रारम्भमें “अचेलक” व अन्तमें “मासं पज्जोसमणकप्पे” इतना भेद है। भगवान् पार्वतानाथ व

भगवान् महावीरके श्रमणमें इन १० कल्पों के बारेमें कुछ कुछ विविच्छिन्नता थी। असलमें अचेलक के जरिये ही विशिष्ट भेद था। सारांश-जैन श्रमणोंमें बस्त्र के लिप पकान्त व्यवस्था नहीं है। दिगम्बर समाजमें बस्त्रके लिप पकान्त नियम है, तो भी वह उक्त गाथा से स्वतंत्र निर्दिष्ट आचेलक्य विधानको अपनाता है। यदि पांचवें महाब्रतसे बस्त्रोंका निषेध हो जाता तो यहां भिन्न कल्प बनानेकी आवश्यकता नहीं थी। यह अचेलकताका स्वतंत्र विधान ही पांचवें महाब्रतमें बस्त्रोंका निषेध नहीं होनेकी गवाही देता है, याने सचेलकपनसे ब्रतधात नहीं होता है, इस बस्तुको स्पष्ट कर देता है। चौबीश तीर्थकरोंके श्रमणोंमें जो स्थित कल्प और अस्थित कल्पकी व्यवस्था है वह इन दश कल्पोंके आधार पर है।

श्री दशबैकालिक सू० अ० ४० थकी ७ व ८ गाथाएं मूला० परि० १० समयसाराधिकार के नम्बर १२६ व १२२ में दाखिल कर दी है। दशबैकालिक सूत्र जिनागम है-आपसमय है। उसकी गाथा समय-सार में ली जाए वह उचित ही है।

(९) श्री जिनागममें बतलाया है कि तीर्थकरोंमें अज्ञान आदि १८ दोष नहीं होते हैं। जब दिगम्बर शास्त्र में लिखा है कि:-क्षुधा इत्यादि १८ दोष नहीं होते हैं। मू० में तीर्थकरों के वर्णन में दि० सम्मत १८ दोषों का इशारा भी नहीं किया है। मगर परिच्छेद ११ शीलगुणाधिकार गा० ८ व १० में जो गुणक्रमके निमित्त हिंसादि २१ दोष गिनाए हैं वे जिनागमोक्त १८ दोष ही हैं। अस्तु ! दि० सम्मत १८ दोष में मृत्युका भी नाम है। सारांश दि० शास्त्रों में तीर्थकर भगवान की मृत्यु नहीं मानी है। मगर मू० परि० २ व ३ की गाथाएं ५९, ७७, ९०, ११७ में केवली भगवानोंका पंडित मरण बतलाया है। गाथा १०७ और ११६ में भी इस कथनका ही प्रतिध्वनि है।

मूलाचार भाग २-दूसरा

इस दूसरे भाग में पांच परिच्छेद हैं—

परिच्छेद	८	द्वादशानुप्रेक्षाधिकार	गाथा	७६
"	९	अनगारभावनाधिकार	"	१२६
"	१०	समयसाराधिकार	"	१२४
"	११	शीलगुणप्रस्ताराधिकार (शीलांगरथ)	गा० २६	
"	१२	पर्यातिनामाधिकार	गा० २०६	

इस दूसरे भागकी विचारणा यथावकाश फिर कभी की जायगी। (समाप्त)

श्रीमहू देवयन्द्रलक्ष्मी समेतशिखर स्तवन

संचाहक—श्रीयुत भवरसालज्जा नाहदा, कलकत्ता।

(धरी ओऽ दो नै राणी सुं अरो—ओ हेशा)

श्री समेतशिखरस्वरु, तीरथ सिरदार;
जिहां जिनवर शिवपद वर्या, मुनिवर गणुधर

श्री समेतशिखरस्वरु (आंकणी) (१)

श्री अजिताहिक जिनवरु, चाविह संघ समेत;
आव्या ए गिरि उपरि, धारी शिव संकेत. श्री० (२)

काउसभग सुद्राधरी, करी योग निरेध;
सकल प्रदेश अडंपना, शेवेशी सोध. श्री० (३)

इर्म अधाती ऐरप्पी, अविनाशी अनंत;
अद्गुसमान गतिथी लहुं, ईक समय लोकांत. श्री० (४)

अंकानितिक आत्यंतडे, विरद्धं भंडुत;
अव्याधपण् वर्या, काले साहि अनंत. श्री० (५)

सिंदू भुज्ज तात्पिक ठेथा, निज गुण आणुंद;
अग्रल अमल उत्सर्गता, पूरण गुणुवृन्द. श्री० (६)

ए तीरथ वंहन कर्या, सहु सिंदू वंहाय;
सिंदूलंणी चेतना, गुणुसाधक थाय. श्री० (७)

साधकता करतां थडां, थाये निज सिंदू;
देवयन्द्र पद अनुभवै, तत्त्वानंद समृद्धि. श्री० (८)

॥ धति श्री समेतशिखर स्तवनं संपूर्णम् श्रारस्तु. ॥

श्रीमहू देवचन्द्रजी महाराजकी बहुतसी कृतिये हमारे देखने में आई है। उन्होंने पूर्वदेश की यात्रा की हो ऐसा कोई प्रमाण आजतक हमारे देखने में नहीं आया। अभी नागपुरमें श्री कान्तिसागरजी महाराज के पास प्रस्तुत स्तवन एक हस्तलिखित प्रतिपर देखनेमें आया है। इससे आभास होता है कि शायद श्रीमहूने समेतशिखर तोर्थकी यात्रा की हो, किन्तु अबतक इस बातका समर्थक कोई प्रमाण देखने में नहीं आया है। इस स्तवनके भाव-भाषासे मालुम होता है कि यह सुप्रसिद्ध अध्यात्मप्रेमी श्रीमहू देवचन्द्रजी महाराज की ही सुकृति होनी चाहिए।

आत्मानुस्वरूप

लेखक-मुनिराज श्री लक्ष्मणविजयल्ल

आत्मा छे, परदोळ क्षे, परदोळाक्तुं कारणु कर्म छे, एम तो प्रायः प्रत्येक आस्तिक हर्षनकारो माने छे, परन्तु तेना स्वरूपमां धतर हर्षनकारो डेवा गोटा वाळे छे, तेवैन हर्षननां अने धतर हर्षननां आत्मा वगैरे संबंधी स्वरूपेना विवेयनथी २५४ थैज जय छे. आत्मा छे, एम मान्या पछी ते डेवा छे, क्यां छे, तेनी अतीत अनागत अने वर्त-मान अवस्था थुं छे, एना संगत वर्णनो. धतर शास्त्रोमां भगतां नथी. आत्मा छे एम मान्या पछी पण जे तेने परिणामी (इरक्कार पामवाना स्वलभाववाणी) मानवामां न आवे तो तेनी सुखदुःख, पुण्यपाप के अंधमेक्षक्वाणी अवस्थाओ. कही पण धरी शड नहि. एकान्त-वाहीओ. आत्माने दूरस्थ (अप्रचयुत, अतुरभूतिक्षेत्रभाववाणी) नित्य माने छे. दूरस्थ नित्यवाहीना भते आत्माने कर्तृत्व भोक्तृत्व कांध पण धरी शक्तुं नथी. जान इच्छाहिना ज्ञवनी साथे, संबंध ज्ञवनुं कर्तृत्व छे, सुखदुःखहिना. संबंध ते ज्ञवनुं भोक्तृत्व छे, अने अदृष्ट, शरीर, धन्दियाहिनो संबंध, ते ज्ञवना जन्म ज्ञवन अने भरणु आहि छे. आत्माने एकान्त नित्य अगर एकान्त अनित्य मानवाथी आत्मानी साथे उपरोक्त एक पण संबंध घटो शडे तेम नथी.

एकान्त नित्य पक्षमां आवतां दूधहो.

पूर्वावस्थाना त्यागपूर्वक उत्तरावस्थानी प्राप्ति ए ज संबंध छे. दूरस्थ नित्यवाहीना भतमां एवो संबंध डेवा रीते धरी शडे ? संबंध विना संबंधीमां कर्तृत्व भोक्तृत्वाहि धर्मो पण डेम धरी शडे ? पूर्वावस्थामां अप्रभाता आत्मा उत्तरावस्थामां प्रभाता अने ए वात सर्वातुलव सिद्ध छे. क्षणे क्षणे जाननी अने सुखदुःखनी हानि वृद्धि थया डरे छे, जन्मथी भरणु पर्यंत ज्ञवनी अनेक अवस्थाओ. इरे ले. जान इच्छाहितुं कर्तृत्व अने सुखदुःखाहितुं भोक्तृत्व ज्ञवनुं अतुलव सिद्ध छे, ते एकान्त नित्यपक्षमां डेवा रीते धरे ? एकान्त नित्य पक्षमां सुखदुःखतुं वेहन अने धरपटाहि संवेदनोनो लेह जेम धरतो नथी तेम अंध मोक्षनो लेह पण नथी धरतो. आत्माने एकान्त नित्य अने अपरिणामी मानवामां आवे तो तेवा आत्मानो सर्वदा अन्ध रहेवो लेधाये या सर्वदा मोक्ष ज रहेवो लेधाये. अंधतुं कारणु आत्मानो हिंसाहिनी विरतिनो परिणाम; नित्य पक्षमां आ रीते हिंसा अहिंसाहिनी परिणतिनो लेह डेवा रीते धरे ?

सांघ्य भतवाणा कहे छे के आत्मा अकर्ता होवाथी पुण्य पाप आंधतो नथी अने अंधनो अभाव होवाथी तेनो भोक्ष पण थतो नथी. प्रकृति कर्ता होवाथी अंध मोक्ष प्रकृति-ना ज थाय ले. तेच्योतुं आ कथन अशबाषित तुल्य छे. अंध मोक्ष जे प्रकृतिनो ज होय तो आत्मानी तो सदा एक सरभी अवस्था रही; संसार पण तेन माटे सरण्यो छे अने मोक्ष पण सरण्यो छे, तो पछी आत्माओ यम नियमाहि दुष्कर अतुष्ठानेतुं आसेवन करवानुं थुं

[१६०]

આ જૈન સત્ય પ્રકાશ

[૭૫૯ ં]

પ્રયોજન છે ? આત્માને જે બંધ નથી તો તેને ભવ-ભ્રમણુનો લય રાખવાની શી જરૂર છે ? અથવા આત્માને જે મોક્ષ થતો જ નથી તો તેને સુક્ષ્મિપદની અલિલાખા રાખવાની કે તે માટે તપશ્ચિહ્ન દુષ્કર અનુધાનેનું સેવન કરવાની શી જરૂર છે ? વળી મોક્ષ માટેનો પ્રયત્ન આત્મા નહિ પણ પ્રકૃતિ કરે છે એ કહેવું ઉન્મત્તપ્રલાપ તુલ્ય છે. પ્રકૃતિ અચેતન છે. અચેતનમાં ઘટાહિની જેમ આલોચના સંભવતી નથી. આલોચના વિના સુક્તયર્થ-અનુધાન ડેવા રીતે ઘટે ? પ્રકૃતિની આલોચનામાં પુરુષ પ્રયોજક છે એમ કહેવું પણ વર્ષ્ય છે. સાંખ્યોએ પુરુષને નિત્યૈક સ્વભાવવાળો માન્યો છે. તે જે બંધ મોક્ષમાં પ્રયોજક હોય છે તો સહા પ્રયોજકત્વની આપ્તિ આવશે, તેથી સર્વદા સુક્ષ્મિ યા સર્વદા સુક્તયભાવનો પ્રસંગ ગ્રાસ થશે.

“ પુરુષોऽવિકૃતાત્મૈવ સ્વનિભાસમચેતનમ् ।

મનુઃ કરોતિ સાનિધ્યાદુપાધિ: સ્કટિકે યથા ॥ ૧ ॥

સાંખ્યોનું કથન છે કે પુરુષ અવિકૃત સ્વભાવવાળો છે, પોતાને પ્રગટ કરનારો છે તથા અચેતન છે. સ્કટિક જેમ ઉપાધિના સાનિધ્યથા વિકૃત હેખાય છે તેમ પ્રકૃતિના સાનિધ્યથી પુરુષ પણ કર્તી છે, તેમ હેખાય છે અથવા જેમ ચંદ્ર સ્વભાવે અવિકૃત સ્વરૂપવાળો હોઈને અન્દોપલના પયઃક્ષરણુમાં કહાચિત પ્રયોજક અને છે, કહાચિત નથી અનતો તેમ આત્મા પણ સ્વભાવથી અવિકૃત સ્વભાવવાળો હોવા છતાં પ્રકૃતિની આલોચનામાં કહાચિત પ્રયોજનક થાય છે, કહાચિત થતો નથી.

તેઓનું આ કહેવું સહંતર ખોઢું છે. સ્કટિક પણ ઉપાધિના યોગે પરિણામાનતર પામે જ છે અને ચંદ્રમા પણ નિત્યાનિત્યાત્મક છે. સર્વદા એક જ સ્વરૂપવાળો હોય તો તે ચંદ્રોપલનાપ્રકાશરણુમાં સહા પ્રયોજક અનરો જ નોઈએ. સહા પ્રયોજક નથી અનતો તેમ તેથી તેને કહાચિત પ્રયોજક અને કહાચિત અપ્રયોજક ઉલ્લય સ્વભાવવાળો માનવે નોઈએ.

વળી સાંખ્યો જે પ્રધાનને અર્થાત્ પ્રકૃતિને એક, અદ્વિતીય અને નિત્ય ભાને તો તેને પણ બંધ મોક્ષ ન હો. પ્રધાનને મોક્ષ માનવા માટે તેને પરિણામી માને તો તેના સ્વરૂપને જ નારા થાય. મોક્ષ વખતે પ્રકૃતિનું પ્રકૃતિલિપ ચાલ્યું જય પણ તેનું સ્વરૂપ જ કયાં રહ્યું ? સાંખ્યોનો સિદ્ધાંત છે કે પ્રકૃતિનો વિશેષ તે મોક્ષ છે ! એ વિશોગનો અર્થ પ્રકૃતિનું પરિણામાનતર સાનનવામાં આવે તો પ્રકૃતિની નિત્યતા પણ ન રહે અને સ્વરૂપ પણ ન રહે, એ કારણે પ્રકૃતિને પણ અન્ધ મોક્ષ હઠી શકે નહિ. એકાન્ત નિત્ય પક્ષમાં મોક્ષ દૂષણું તો એ આવે છે કે પુરુષ અને પ્રકૃતિ અથવા અચેતન અને જડ ઉલ્લય કોઈ પણ જાતના પરિણામને પામનાર હોય કિન્તુ નિવિકાર હોય તો એ અન્તે તત્ત્વોના મિશ્રણરૂપ ક્ષણું ક્ષણુમાં હેખાહેતી વિવિધતા જગતમાં કઢી પણ ન હેખાય ! વિવિધતાની ઉત્પત્તિ જૈનદર્શને સ્વીકારેલ પરિણામી નિત્યત્વવાદ અથવા નિત્યાનિત્યત્વવાદી જ વઠી શકે છે.

આત્માને સુઅદૃષ્ટ, બટપટ વિશાળ અને અન્ધ મોક્ષ આહિ પ્રત્યક્ષ અનુભવાય છે. એ અનુભવ પ્રમાણુના આધારે જ આત્મા અપરિણામી (ફૂટરથ) નિત્ય નહિ પણ પરિણામી નિત્ય છે એમ સિદ્ધ થાય છે.

अंक ५]

आत्मानुं स्वरूप

[१५७]

ऐकान्त अनित्य पक्षमां हृष्णो।

आत्माने ऐकान्त अनित्य भाननारना पक्षमां पण सुभद्रःभनो लोग, विचित्र प्रकारतुं सर्वेहन अने अन्य मेक्षाहि कांध पण धरी शक्तुं नथी. क्षणिक आत्मा क्षणु मन रहे छे ते सुभद्रःभ उभयनो अतुसव डेवी रीते करी शके ? सुभ लोगवनार आत्मा जुहो, हुःभ लोगवनार आत्मा जुहो ऐम भानवुं पडे.

लोकमां के सुभ लोगवे छे ते ४ हुःभ लोगवनारा छे, पूर्व लवे क्षेषु कर्म वांध्यु छे ते ४ आत्मा आ भवमां कर्मने लोगवे छे, जे आत्मा शारीरिक अने भानसिक अनेक प्रकारनां हुःभने लोगवे छे ते ४ आत्मा मेक्ष माटे प्रथत करी मेक्ष गेगवे छे, जे वगेरे प्रभाणुसिक्ष प्रसिद्ध व्यवहार छे, ते क्षणिक ऐकान्त पक्षमां डेवी रीते धरी शके ? क्षणिक ऐकान्त पक्षमां कर्म करनार अन्य, इण लोगवनार अन्य, मेक्ष माटे प्रयास करनार अन्य अने मेक्ष गेगवनार अन्य हरे छे. जे ऐम न माने अने अन्यव्यमाने तो क्षणिकनानो सिद्धान्त रक्तो नथी. कारणु के अन्यव्य नित्यतानी सिद्धि करे छे.

‘आ ते ४ छे’ ऐवुं प्रत्यक्षिज्ञान थवा माटे वस्तु अने तेनो दृष्टा उभय आवश्यक छे. क्षणिक ऐकान्त पक्षमां जे जातिनुं प्रत्यक्षिज्ञान के भवरणु वगेरे पण वटतुं नथी.

आत्मानुं कर्तृत्व

आत्मानुं लोकर्तृत्व भानवुं अने कर्तृत्व न मानवुं, ऐथी कृतनाश अने अदृतागम इपी होगो उपस्थित थवा उपरान्त लोकविशेष आहि भीज पणु असंभय होगो. उत्पन्न थाय छे. ‘आ भाणुम् पोतानुं करेलुं कर्म लोगवे छ’ ऐवो प्रसिद्ध लोक व्यवहार, आत्माने अकर्ता भाननारना भतमां टक्को नथी.

स्वभाव ऐ ४ सुभद्रःभनो आपनार छे; कर्म नथी, ऐम न करेलुं. स्वभाव भावरूप छे के अभावरूप ? अभावरूप होय तो अभाव तुच्छ स्वरूप छे तेथा कांध करी शके नहि. अभावरूप छे तो नानारूप छे के ऐकरूप ? ऐकरूप छे तो नित्य छे के अनित्य ? नित्य कारणतुं कारणु होइ शके नहि. अनित्य ऐक होइ शके नहि.

अनेक भावरूप स्वभाव भूर्त छे के अभूर्त ? भूर्त होय तो कर्म ज छे. अभूर्त आकाशनी जेम सुभद्रःभनुं कारणु अने नहि. ज्वने अनुग्रह उपवान भूर्त पुहूलथी ज थाय छे.

ज्ञव अभूर्त होवा छतां सुभद्रःभनुं कारणु अने छे के नहि ऐवी शंका नहि करती. संसारी ज्ञव ऐकान्ते अभूर्त नथी. ज्ञव अनाहिकर्मसंततिपरिणामाभ्यन्त स्वरूप होवाथी कथ्यचित् भूर्त छे. भुक्त ज्ञवो डेवण अभूर्त छे तो ते सुभद्रःभ अननेनुं कारणु अनता नथी: डेवण सुभ प्रत्ये ज कारणु अने छे. वणी सुभद्रःभनुं कारणु स्वभाव छे तो ते कार्यगत भाव छे के कारणुगत ? कार्यगत भाव कारणु होइ शके नहि. कारणुगत भावने कारणु मानवाथी कर्म ज आवशी.

टेलको सुभद्रःभना कारणु तरीके कर्मने नहि पण नियतिने माने छे ते पण ऐकूं छे. नियतिने ऐकरूप मानवाथी सङ्कल कार्योनी ऐकरूपता थवी, विचित्ररूप मानवाथी

तेने भेदक कोऽप्त अन्य मानवुं पशो. ते नियति छे के भीजुं कांचि? नियति मानवाथी अन-वस्त्राहोष प्राप्त थरो, भीजुं कांचि मानवाथी नियतिवाहो. उच्छेद थरो.

डेटलाक् यद्यप्तिवाहीयो. कहे छे के धर्मादिने नेम स्वकृत कर्म विपाक विना पणु धी, तेल, सुराहि विचित्र उपभोग थाय छे तेम प्राणीयोनो. पणु स्वकृत कर्म विपाक विना यद्यप्तिवाथी सुभद्रुःप्राप्तभोग धी जशे. तेयोनुं आ कहेवुं पणु भिथ्या छे. धर्मादिनी विचित्र उपभोग्यता, तेना उपभोक्ता हेवहाताहिना कर्मपरिपाक्ना सामर्थ्यथी छे. समान भारी अने समान कुंभकारथी अनेवा समान स्थान रितिवाणा धटोमां पणु तैत्वाहि विचित्र उपभोग तथा विलिन विनाशहेतुयोनो. उपनिपात थाय छे, तेनु कांच कारणु लेवुं जोध्यो, अने ते कारणु ते उपभोक्तानुं कर्म छे. अन्यथा सर्वनो उपभोग तथा युगपत् विनाश थवो जोध्यो.

डेटलाक् कालवाहीयो. कहे छे के विचित्र प्रकारना सुभद्रुःभानुभवतुं कारणु दव्या वस्त्राहोष या समयावलिकाहित्रप काण छे. तेयोनुं कथन पणु सत्य नयी. विचित्र प्रकारना सुभद्रुःभानुभवेतुं कारणु ऐकान्ते काण नयी. कारणुके तुल्य कालवालाने पणु सुभद्रुःभानुभवतुं वैयिग्रह देवाय छे.

सुभद्रुःभानुभव वैयिग्रहतुं प्रधान कारणु कर्म छे, कालाहि तेनां सहकारी कारणु छे. नेम अंकुरतुं प्रधान कारणु भीज छे, पृथ्वी जब हवा प्रकाशाहि तेनां सहकारी कारणु छे, तेम सुभद्रुःभानुभव वैयिग्रहतुं प्रधान कारणु शाता अशाता वेदनीय कर्म छे एम श्री. जिनवरन्दो इरमावे छे. अमूर्त सुभद्रुःभानुभवतुं प्रधान कारणु मूर्त कर्म कर्ता रीते धी शक? एवी शंका नहि करवा. कारणु के सुभद्रुःभानुभव करनार संसारी आत्मा कथाचित् मूर्त छे अथवा अमूर्त आत्मा साथे क्षीरनीर न्याये मणी गयेलुं कर्म कथाचित् अमूर्त छे. मूर्त मूर्तने के अमूर्त अमूर्तने प्रधान (परिणामी) कार्यकारणु भाव धी ज्वामां डोऽप्त ज्ञानिनी हरकत नयी. कर्म रूपे परिणाम पामेल आर्भाणुवर्गीयाना समूहाहो पुहगलेने पारिणामिक भावनी साथे औद्योगिक भाव पणु प्रश्नमरतिकार अने तत्वार्थकारे मानेलो छे ते वात कर्म पुहगलने पणु कथाचित् अमूर्त सिद्ध करे छे.

सुभालिलापी ज्ञव हुःभद्रगवाणुं कर्म करे? एवी शंका पणु नहि करवी. रोगी नेम जासुवा छतां पणु अपथक्षया करे छे तेम भिथ्यात्वाहिथी अलिङ्गत ज्ञव पणु हुःभद्रगव कर्म करे छे. ज्ञव सुखनो तीव्र अलिलापी लेवा छतां ज्यां सुधी सुखना उपायेनुं तेने अज्ञान के त्यां सुधी ते सुखने प्रतिकूल इत्याणुं कर्म उपार्जन थाय, तेवी प्रवृत्ति कर्या ज करे छे. व्याधिनी वृत्तिने धृच्छते पणु रोगी विचित्र प्रकारना मोहथी व्याधिनिवृत्तिने प्रतिकूल उम्मा करे ज छे. तेम छोध लोभाहि विकारेन वशवर्ती ज्ञव छोध लोभाहि दोषोना हुष्ट विपाका जासुवा छतां छोध लोभाहि दोषोनुं सेवन करे ज छे.

भिथ्यात्व, अविरति, प्रभाद, क्षाय अने घोगोने परवश ज्ञव सुखनी धृच्छाये पणु हुःभद्रगव कर्मेनि करे छे. भिथ्यात्वाहिनो हेतु पूर्वकृत कर्म छे अने भिथ्यात्वाहिथा केर नवीन कर्म अंधाय छे. एम भीजुंकुरवत् अनाहि कर्मपरम्परा यात्या करे छे. सर्व कर्म, कर्मव्यक्तिनी अपेक्षाये आहिमान छे, अने कर्म संततिनी अपेक्षाये अनाहिमान छे,

महाराज हिन्दुमलजी बैद

लेखक-श्रीयुत हजारीमलजी बांठीया, बीकानेर

आप मेहता मूलचंदजीके द्वितीय पुत्र थे। आप अपने कालके सर्वोच्च ओसवाल मुत्सुधी थे। अपने पूर्वजोंकी तरह आप भी बुद्धिमान, कुशल, दूरदर्शी, सुदक्ष राजनीतिज्ञ और प्रतिभाशाली पुरुष थे। आपकी प्रतिभा सर्वत्र समस्त राज्योंमें व्यापी हुई थी। अंग्रेज-सरकारकी आप पर विशेष कृपा थी। आप अपने विनम्र स्वभाव पवं कार्यतत्परताके कारण महाराजा साहब एवं अपने देशवासियोंके साथ साथ अंग्रेज पदाधिकारियोंके बड़े प्रिय बन गये थे। इस निवन्धमें आपके किये हुये खास खास कार्यका संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया जाता है।

संवत् १८८४में आप बीकानेरकी ओर से बकील बनकर दिल्ली गये। वहां आपने अपनी बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञताका अच्छा परिचय दिया। इस पर महाराजने रत्नसिंहजी आप पर प्रसन्न होकर आपको दीवान के पद पर सुशोभित किया। और सिक्केदारीकी मुहर प्रदान की।

सं. १८८८में महाराजा साहबने शाहजी हुकुमचंदजीके साथ आपको भी मि. जॉर्ज कलार्की सेवामें शोखावादी भेजा।

वि. सं १८८८ मार्गशीर्ष वदि ८ को मुगल बादशाह अकबर (दूसरे) की ओरसे राजा ज्वालाप्रसाद खिलअत आदि महाराजा रत्नसिंहजीके लिये लाया तो उस समय किलेके पास दरबार किया गया। इस अवसर पर

कर्म सत्ता मात्रथी इब आपतु नथी, पर्यु प्रतिनिधित वीर्य विशेषथी इब आपे छे. कर्म सत्तामात्रथी इब आपे तो सर्व कर्म सर्व इकने आपे अथवा शाता अशाता उल्लयनो। युगपत् (ओड़ी साथे) अनुभव थाय. माटे सत्तामात्रथी कर्म इब आपतु नथी पर्यु प्रतिनिधित स्वभवाने आधीन थाने ज अभूक प्रकारना इकने आपे छे. कर्मनो ऐ प्रतिनिधित स्वभाव स्व संर्थकी जे ज्ञव, तद्वगत शुभाशुभ परिणामनी अपेक्षा राखे छे, कर्मनो प्रतिनिधित स्वभाव व्याववामां ज्ञवनो अध्यवसाय निभित कारण्य थाय छे, ऐ ज ज्ञवनु कर्तृत्व छे. ऐ प्रतिनिधित स्वभावनु परिणामी कारण् कर्म छे. कोइ पर्यु कार्य परिणामी अने ध्रुतर कारण् विना हेतु नथी. कर्मनो (अभूक प्रकारना इणनो। अनुभव करावनार) प्रतिनिधित स्वभाव थवामां कर्म उपादान कारण् छे अने ज्ञव, वीर्यपरिणाम अथवा अध्यवसाय निभित कारण् छे. युक्तिथी ऐ वात सिद्ध थाय छे ऐम श्री जिनयंदना आगमथी पर्यु ऐ वात सिद्ध थाय छे. श्री जिनयंदनु आगम कहे छे के-

“ जाव णं पस जीवे पयइ वेयइ परिफुरइ ताव णं पस सत्तविह बंधए वा। ”

ज्ञानसुधी आ ज्ञव हाले छे, थाले छे, इंपायमान थाय छे (धत्यादि) त्यांसुधी ते सात अथवा आठ प्रकारनां कर्मनो वाधे छे.

(चालु)

[१६४]

श्री लैन सत्य प्रकाश

[वर्ष ६]

महाराजा साहबने हिन्दुमलजीको महारावका खिताब प्रदान किया और आपके घर पधारकर मोतीयोंका हार इनायत किया ।

वि. सं. १८९१में महाराजा रत्नसिंहजीके पास गवर्नर जनरलके पंजट कर्नल एलिवसका इस आशयका खरोता आया कि सीमा सम्बन्धी निर्णयके लिए आप मुझसे मिले । इस अवसरपर महाराजा साहबने अपनी ओरसे महाराव हिन्दुमलजीको गवर्नर जनरलकी सेवामें भेजा ।

बीकानेर रियासतकी ओरसे अंग्रेज-सरकार को २२००० रुपये फौजी खर्चके लिये प्रति वर्ष देनेका इकरार था । महारावजीने बहुत कोशीश कर यह रकम अंग्रेज सरकारकी ओरसे माफ करवा दी ।

वि. सं. १८९६में उदयपुरमें महाराणा सरदारसिंह आपके बुद्धिमत्ताके कार्योंको देखकर बहुत चकित हुए और उन्होंने महाराजा रत्नसिंहजीसे महाराव हिन्दुमलजीकी सहायता चाही, जिसका महाराजा साहबने सहर्ष स्वीकार किया ।

वि. सं. १९०४ में लुटेरोंको सहायता देनेका झुठ दोषारोपण अवबासों द्वारा हिन्दुमलजीके उपर किया गया, जिससे आप अपनी निर्दीचिता प्रमाणित करनेके लिए गवर्नर जनरलकी सेवामें शिमले गये । वहाँ आपकी तत्कालीन वाइसराय महोदय मि. हार्डिंजसे मुलाकात हुई । इस पर वायस-राय महोदय मि. हार्डिंजने आपके कार्यों पर प्रसन्न होकर आपको खिलअत प्रदान की । इस समयके पत्रका सारांश नीचे दिया जा रहा है:—

“ सन् १८९६ की श्री मई को राइट आनरेबल गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंज शिमला दरबारके वक्त मेहता महाराव हिन्दुमल दीवान विकानेरसे मिले और खिलूत बक्षी । श्रीमानने उनके ओहदे और सचिवित्रके मुताबिक इज्जतके साथ वर्तव किया । ” *

सं. १९०४में कर्नल सदरलैंडके बीकानेर पधारनेके नमय महाराजा रत्नसिंहजीके मना करने पर भी हिन्दुमलजी बीमारीकी हालतमें गजाहट होकर महाराजा साहबके साथ उनकी पेशवाई को गये । वापिस आते समय आपकी दशा अन्यथिक खराब हो गई और महलके फाटसके पास पहुंचते पहुंचते आप मृत्यु हो गये । फिर आप बड़ी हिकाजतके साथ महलके भीतर ले जाये गये । दिन पर दिन आपकी हालत चिन्ताजनक होती गई और चंद ही दिनोंके बाद ४२ वर्षकी अवस्थामें आप जैसे रत्नको मृत्युने आ देरा और आप स्वर्गवासी हो गये ।

आपके स्वर्गवास पर महाराजा साहबने एक खास रुक्का भेजकर आपकी असामयिक तथा दुःखद मृत्यु पर अफसोस प्रकट किया और सहानुभूति

* ओसवाल समाजके इतिहास पृ. १६९ से ।

अंक ५]

महाराव हिन्दुमल्ल ऐंड

[१६५]

प्रदर्शित की। कप्तान जैक्सनने भी आपकी दुःखद मृत्यु पर अपने चि. सं. १९०४ माघ सुदि ७ के खरीतेमें शोक जाहिर किया। आपके तीन पुत्र थे जिनके नाम कमशः मेहता हरिसिंहजी, गुमानसिंहजी और जसवन्तसिंहजी थे।

सं. १९०२ में नेठराणा नामक गांव आपको महाराजा साहबने जागीर में प्रदान किया।

महाराव हिन्दुमल्लजी बडे प्रतिभाशाली पुरुष थे। आपने बीकानेर राज्यकी जो जो महान् सेवायें की हैं वे इस राज्यके इतिहासमें स्वर्णाक्षरों से लिखे जाने योग्य हैं।

आपकी इन सब सेवाओंको तत्कालीक बीकानेर नरेशने बड़ी उदारताके साथ अपने खास खास रुक्कों में कवूल किया है। अतः हम एक खास रुक्के की अविकल नकल योंकी त्यां यहाँ पर उद्धृत करते हैं। यह पत्र श्रीयुत बाबू अग्रचंदजी भंवरलालजी नाहटा बंधुओंके संग्रहमें है।

॥ श्री रामज्ञो ॥ दसकत खास मु हीदुमल दीसी सुप्रसा (द) वचै अप्रंच ठाकुर बीरीसालनै देसणेक सु लपेट लीयो पछे श्री ठाकुरजी रै दरसण नै गयो जारा ठाकुरनै भरै हाथी रै खुवासी मैं चाहो तो ही पेट रो मैल गयो नहीं पछे मागै वगसी ठाकुर नै अमरावतां नै राजी चाजी कर विदा किया साठ हजार रुपिया कीया सु थां उठै सारी सुणी हुसी श्री माताजी रै गढमें बैस सुंस कवल कीया हीदु मुसलमान रै सुस हुवै छै सुसारा लीया अमरावतां रो ठाकुर झालो ठाकररा हाथ अमरावतां झालो इसो सुण कर विदा हुवा माझनै जाय पकड लीया पछे एक एकनै काढता गया इसी केता गया हजूर इयाद करै छै थांसु एकता करसी थे केता मारै कोटरी छाया तीन बार पठे छै सु वा छाया केथ जारा देवीसीघटकराणे रो, उवै इसी कही उवा छाया कोट सु बार आसी जारा ठीक पडसी सु आकर गयो हमें पूगल गयो छै पूगलबालो जेसलमेर गयो छै सु हमै हुवै सु ठीक पडसी ईयै देखतां तो ठाकुर राव जैसलमेर रो रावल कदेरा एक छै लारली कुबध सारी सारी इयांरी छै दीसै तो इसी छै दूजा समाचार सारा मु मुलचंद वा मुनसी मानीराम राधाकिसन रे कागदा सुं जाणसी कुवर पदै रो चाकर छै सात पीढी रो चाकर छै सामधरमी चाकर छै सु जेसलमेरी हुकम मंगाय दे पैलकै जु न हुवै संवत १८८७ मीनी सावण सुद ५ भादवा सुद दुज नै डेरा दाखल हुसा ताकीदी सुं उथला आवै सु करे अठै मोटौ काम तौ थारै समाचार आयां जान करसां पुगलरो काम तो पैली करसा जेजरो काम न छै शारी चाकरी छै। मजो तो पैलको बदलौ लीयो सु छै ॥

उपरोक्त खास रुक्के से महाराव हिन्दुमलजी के उस अतुलनीय प्रभाव का पता लगता है जो बीकानेर के राजनैतिक क्षेत्रमें था।

શ્રીજિનપ્રભસ્તુરવિરચિત વિવિધતીર્થકલ્પાન્તર્ગત

શ્રીઆર્ભૂદકલ્પ.*

[વિશિષ્ટ ટિપ્પણીઓ ચુક્ત અનુવાદ]

અનુવાદક—શ્રીયુત પણેખાલા પ્રેમચંદ શાહ, વ્યાકરણતીર્થ

અરિહંત શ્રી ઋબસંહિત તથા નેમિનાથ પ્રભુને નમરકાર કરીને આર્ભૂદ નામના મોટા પર્વતનો કલ્પ સંક્ષેપી હું કહીશ. (૧)X

પ્રથમ સાંભળ્યા પ્રમાણે શ્રીમાતા (કન્યાકુમારી) દેખીની ઉત્પત્તિ કહીશ, ડેમક તેની સ્થાપનાથી આ પર્વત જગતમાં પ્રસિદ્ધ થયો. (૨)

રત્નમાલા^૨ નગરમાં રત્નશૈખર નામનો રાજ થયો. પુત્ર ન હોવાથી દુઃખી થયેલા તેણું કેટલાક શાકુનિક-શુકનજોનારા ન્યોતિપીઓને (રાન્યને માલિક કાણ થશે એ જણુવા) અહાર મોકલ્યા. (૩)

લાડકાની લારીને વહન કરતી દુઃખી સ્વીના માથા પર દુર્ગા (લૈસવ)ને જોઈને તેઓ (શાકુનિકા)એ રાજને કહ્યું કે—“આનો પુત્ર આપના સ્થાને (રાજન) થશે.” (૪)

રાજને તેને ગર્ભ સાથે જ મારી નાખવાનો તે મતુયોને આહેશ કર્યો, તથા રાત્રે તેને એક આડામાં નાખી, (પણ) (તે) શરીર ચિંતા (શૌચ માટે)ના અહાનાથી તે આડામાંથી અહાર નીકળી. (૫)

લયથી દુઃખી તે સ્વીએ પુત્રને જન્મ આપ્યો અને જલદીથી જ તેને ‘ઝાડ’ જાડ વર્ચ્યે મૂળ દીધો. આ ખીના નહિ જણુનારા તેઓ (મારાઓ)એ તેને આડામાં લાવીને મારી નાખી. (૬)

પુષ્યથી પ્રેરાપેલા આ પુત્રને (એક) સુગલી બને સંધ્યા વખતે દૂધ પાવા લાગી. (આમ) મોટા થતાં કોઈ વખતે (તેના) આગળ મહાલક્ષ્મીની ટંકશાળ થઈ. (૭)

* આ કલ્પ જરા વિસ્તૃત હક્કાકિત સાથે પ્રયાંધચિંતામણિમાં “પુજ રાજ અને શ્રીમાતાના પ્રયાંધ” એ નામે આદેખાયેલો જોવાય છે. વળી સિંધી લેનેન ચંચમાળાથી પ્રકાશિત “પુરાતન -પ્રયાંધ-સંગ્રહ”માં પણ એ પ્રયાંધમાં દૂંક ફેરફારવાળી હક્કાકિત આદેખી છે.

X આ કલ્પ મૂળ પવયમય સંસ્કૃતમાં છે. અહીં દરેક પેરેગ્રાફના છેંડે કૌંસ()માં જે આંકડા આબ્યા છે તે મૂળ કલ્પના તે તે શ્લોકને દર્શાવવા માટે આપ્યા છે.

૧- દેલવાડાના વિમલવસહી મંહિરની પાછળ હિંદુઓનાં જરૂરુ થઈ ગયેલાં એ-ચાર મંહિરમાં એક શ્રીમાતા (કન્યાકુમારી)નું જરૂરુ થઈ ગયેલું મંહિર છે. તેમાં શ્રીમાતાની મૂર્તિ છે તેને લોડા કુંવારી કન્યાની મૂર્તિ પણ કહે છે.

૨- શ્રીમાલપુરાણ અને વિમલપ્રયાંધના ઉલ્લેખ પ્રમાણે કલિયુગમાં લિનમાલ તરીકે પ્રસિદ્ધ શાહેરનું જ નામ તેતાયુગમાં રત્નમાલ હતું. એટલે પુરાણ કાળમાં પ્રસિદ્ધ રત્નમાલ તે જ લિનમાલ હશે કે ડેમ તે વિદ્ધનોએ શેખું જોઈએ.

અંક ૫]

શ્રી અર્થદ્વિકલ્પ

[૧૬૭]

મૃગલીના ચાર પગની વર્ચે આળકડુપવાળું નવીન અચ્યું થયેલું સાંભળી લોકોમાં
(એ) વાત પ્રસરી ગઈ. (૮)

તે કોઈ નવો થનારો રાજ હતો એમ (શાકુનિકાથી) સાંભળી રાજને તેને ભારવા
માટે યોક્ષાએ મોકલ્યા. તેઓ (યોક્ષાએ) એ તે (આળક)ને નગરના કિલ્લામાં જ સાંભળે
નેછને આળકલ્યાના લયથી માર્ગમાં આવતા (ગાયોના ટોળાના પગમાં કચરાધને મરી જણે
એમ સમજુ) ગાયોના ઝુડુમાં મૂઢી દીધો. તે (આળક) તે જ પ્રકારે તાં રહ્યો, પણ ભાગથી
એક અણા (તનું રક્ષણ કરવા) આગળ આવ્યો. તેના પ્રેરક (ગોવાળે) તે આળકને તે અણના
ચાર પગ વર્ચે મૂક્યો. આ સાંભળીને અને મંત્રીના સમજલવવાથી રાજને તે આળકને
ખુશીથી પોતાનો વારસ માન્યો. (૯, ૧૦, ૧૧)

અતુક્ષે તે પુંજ નામનો રાજ થયો, તેને ઇપવાળી શ્રીમાતા (નામની) પુત્રી થઈ,
પણ (વાંચો એટલો હતો ક) તે વાંદરાના મોંવાળી હતી. (૧૨)

વૈરાગ્યથી નિર્વિષ્યા (કામવિનાની થતાં) તેને જાતિસમરણું જાન ઉપલયું અને
પિતાને આગલા અવમાં પહેલાં જ્યારે પોતે વાનરી હતી તે (સમયનું) સ્વરૂપ કહ્યું. (૧૩)

“ અર્થદ (પર્વત)માં ઝાડની ડાળીએમાં કુર્તી મને કોઈએ તળવામાં (તીર)
મારી વીંધી નાખી, ઝાડની નીચેના કુંડમાં મારું ધડ પડી ગયું (તે) તમે વિચારો. (૧૪)

તે કામિત (ઇચ્છિત હેનારા) તીર્થના માહાત્મ્યથી મારું મનુષ્યનું શરીર થયું
અને મસ્તક તેવી જ રીતે છે તેથી આજ પણ હું વાંદરાના સુખવાળી હું. (૧૫)

પુંજે પોતાના માણુસો મોકલ્યિને કુંડમાં તે (વાંદરીઠું) મસ્તક નાખી દેવરાયું; તેથી
તે મનુષ્ય (ખ્રી) સુખવાળી થઈને અર્થદગિરિમાં તપસ્યા કરવા લાગી. (૧૬)

એક વર્ષત આકાશ માર્યે જતા ડેશાગિએ તેને નેછને. (તેના) ઇપથી મોહિત થઈ,
આકાશથી નીચે ઉત્તરી તેને પ્રેમ પૂર્વક કહ્યું— “ હે શુભ લક્ષ્યવાળો ! તું મને કેવી
રીતે પરણી શકે ? ” (૧૭)

તેણે કહ્યું— “ રાનિના પ્રથમ પ્રહર વાતી ગયો છે તેથી અત્યારથી લઘને કુકડાનો
શર્ષન થાય (સવાર થાય) તે પહેલાં જ કોઈ વિદ્યા વડે આ પર્વતમાં સુંદર એવી ... ભાર
પાજ તું (ધ્યાંધીશ) કરીશ તો તું મારો વર થઈશ ” એથી તેણે (ઝસ્પિએ) એ પ્રહરમાં તે
પાણે નોકરો વડે ધ્યાંધી તે પહેલાં જ તેણે પોતાની શક્તિથી કુકડાનો શર્ષન કરાવ્યો તે
કપટને જાણુનાર (ઝસ્પિ)ને વિવાદ માટે ના પાડવા છતાં તે રોક્ખો નહિ. (૧૮, ૧૯, ૨૦)

નહી તીરે, બહેન સાથે વિવાદ કરવાની ધર્યા કરનારા તે (ઝસ્પિ)ને તેણે (શ્રીમાતાએ)
કહ્યું “પરણવા માટે (ધર્યા હોય તો) નિશ્ચલ છોડીને મારી પાસે આવો.” (૨૧)

૩- આ ધોણી જેની મૂર્તિ શ્રીમાતા મહિની બદાર એક તૂટેલા મહિના હુંમટ નીચે
પુરુષાકારે ભેણી છે તેના હાથમાં પાત્ર છે; જેને લોકો ‘રસિલા વાદમ’ની મૂર્તિ તરીકે
એળખે છે. (પુરાતન પ્રથમ સંગ્રહમાના શ્રીમાતાના પ્રથમમાં પણ “રસિલ વાલમ” એ
પ્રકારનું નામ આ ઝસ્પિનું છે.) રસિયો વાદમ તે ઝસ્પિ વાલિમકી હોય એમ કેટલાકોનું
અતુમાન છે.

[१६८]

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ

[વર્ષે ક]

તે પ્રકારે કરીને આવેલા તે ઋષિના પગમાં વિદૃત દૂતરાએઓ ભૂડી તેણે (શ્રીમાતાએ) શુણથી આનંદિત થઈ તેનો તે જ શુણ વડે વધુ કર્યો. (૨૨)

આ પ્રકારે જન્મભર અખંડ શીલવાળા તેણે જન્મ સાર્થક કરી સ્વર્ગ મેળવ્યું. ત્યાં શ્રી પુંકે શિખર વિનાતું તેનું મહિર અનાયું. (૨૩)

૭ ૭ માસને અતે પર્વતની નીચેના ભાગમાં રહેલેા અર્થુદ્દેશ નામનો સર્પ ચાલે છે તેથી પર્વત કમ્પાયમાન થાય છે તે કારણથી બધાં મહિરા શિખર વિનાનાં છે. (૨૪)

લોકા આ પ્રમાણે કહે છે—

પહેલાં આ હિમાલયથી ઉત્પન્ન થયેલ નાનિદ્વિર્ધનનું નામનો પહાડ હતો, સમય જતાં અર્થુદ્દેશ નામના સર્પરાજના રહેડાણથી તે અર્થુદ્દેશ આ પ્રમાણે (નામવાળો) થયો. (૨૫)

૪— આની દંતકથા પ્રકારાન્તરે પણ લોકમાં પ્રથમિત છે. કહેવાય છે કે રસિયો વાલમ મંત્રવાહી પુરુષ હતો. તે આયુના રાજની કન્યા શ્રીમાતા સાથે પરણુવા ધર્યાછે હતો; પરંતુ કન્યાના માતા પિતા તેમ કરવા યુશી નહોતાં. છતાં છેવટમાં રાજને તેને કહ્યું:- સંધ્યા સમયથી શરૂ કરીને પ્રાતાંકણમાં કુકડો યોગે ત્યાં સુધીમાં એક જ રાત્રે આયુ પહાડ ઉપર લોકાને ચઢવા જોતરવા માટે બાર પાજ-રસ્તા બાંધી આપે તો તેને મારી પુત્રી પરણ્યાયું. રસિયા વાલમે તે સ્વાક્ષર્યું, અને મંત્ર શક્તિથી ડામ શરૂ કર્યું. કન્યાની માતા તેની સાથે પોતાની પુત્રીને પરણ્યાવવા ચાહતી નહોતી. તેણે નાણ્યું કે આ તો હમણ્યાં જ અધું ડામ પૂરું ઉરશે અને પુત્રીને પરણ્યાવવી પડશે. એમ નાણ્યુને તેણે પોતે સમય થયા પહેલાં જ કુકડાનો શબ્દ કર્યો. રસિયા વાલમે નિયાશ થઈને ડામ અધૂરું છોડી દીધું; જે લગભગ પૂરું થવા આવ્યું હતું; પરંતુ તેને જ્યારે માલૂમ પડયું કે આ કપટ હતું ત્યારે તેણે શાપ આપ્યો. કેથી માતા અને પુત્રી અને પદ્ધતિનાં થઈ ગયાં. માતાની ભૂર્તિ તોડી નાખી તેના પર પથ્થરનો ઠંગલો કર્યો; જે અત્યારે પણ ત્યાં પડેલો છે. પુત્રીની ભૂર્તિને લોકા શ્રીમાતા અથવા કુંવારી કન્યા કહે છે. પછી રસિયો વાલમ પણ વિષ આધને ત્યાં જ મરી ગયો. તેની ભૂર્તિના હાથમાં જે પાત્ર છે તેને લોકા વિષનું પાત્ર માને છે.

૫— અર્થુદ્દેશ નામનો સર્પ જ જ મહિને પડયું ફરેવે છે તેથી આયુ ઉપર જ જ મહિને ધરતીકંપ થવાનું મનાય છે; આથી આયુ પરનાં મંહિરનાં બધાં શિખરો નીચાં છે તેથી તેને શિખર વિનાનાં કલ્લાં હશે. કેચેક ધરતીકંપ થતાં પડી જવાનો સંભવ રહે છે. નૈનોની માઝે હિંદુમહિરનાં શિખરો પણ નીચાં છે.

૬— તથી કરતા વચ્ચિષ્ઠ સુનિની કામદેનુ ગાય ઉત્તાં ઋષિએ જોદેલા જાંડ આડામાં પડી ગઈ. ગાયને તે આડામાંથી નીકળાયું મુસ્કેલ થઈ પડ્યું. પણ પોતે કામદેનુ હોવાથી પોતાના દુધથી તેણે આપ્યો ખાડો લયો અને પછી પોતે તરને બહાર નીકળી આવી; પરંતુ ફરીને આવું કષ્ટ ન પડે જેટલા માટે વચ્ચિષ્ઠ ઋષિએ હિમાલયને પ્રાર્થના કરી; તેથી હિમાલયે પોતાના નાનિદ્વિર્ધન નામના પુત્રને ઋષિએનું હૃદય મટાડવાની આસા કરી. વચ્ચિષ્ઠ નાનિદ્વિર્ધનને અર્થુદ્દેશસર્પ દ્વારા ત્યાં લાગ્યા અને તેને તે આડામાં રથાપી ખાડો પૂરો કર્યો અને અર્થુદ્દેશ સર્પ પણ પહાડની નીચે ત્યાં જ રહેવા લાગ્યો. આનાં અર્થુદ્દેશ અને નાનિદ્વિર્ધન નામ પણ તે માટે આ દંતકથા કહેવાય છે.

આંક ૫]

શ્રીમહારૂહકદ્વય

[૧૬૬]

આ પર્વત ઉપર સંપત્તિશાળી બાગુ ગમ ગોગલિક તપસ્વીઓએ અને હનરોચિંડીઓ વિશે છે. (૨૬)

એવાં એક વૃક્ષ, વેલડી, પુષ્પ, ફળ, કન્દ અને આણ નથી કે જે અહીં ન જોવામાં આવતાં હોય. (૨૭)

અહીં રાત્રે મોટી આખધિઓએ દીવાની માઝક જળને છે, સુગધીવાળાં અને રસથી ભરપૂર એવાં એ પ્રકારનાં વનો પણ છે. (૨૮)

અહીં સ્વચ્છદ્વારે ઉભજતી સુદર જર્મિઓવાળી, તારે રહેલાં આડાનાં પુણોથી યુક્ત, તૃષ્ણતુર પ્રાણીઓને આનંદ આપનારી મંદાકિની નામની નહીં છે. (૨૯)

આ (પર્વત)નાં જીવાં હનરોચિંડીની શિખરો શોને છે; જેમાં સુર્યદૈત્યના દોડાઓએ પણ ક્ષણીય રૂપલના પામે છે. (૩૦)

અહીં ચંડાલી, વળતૈલેલ, કન્દ વગેરે કંદની જાતિઓએ તે તે કાર્યને સિદ્ધ કરનારી પગલે પગલે જોવાય છે. (૩૧)

આ (પર્વત)ના આથર્વ કરાવનારા કુંડાં ૧૦ધાતુઓની ખાણો અને અમૃત એવાં પાણીવાળાં અરણુંઓથી યુક્ત સુદર પ્રદેશો છે. (૩૨)

અહીં જીવેથી પક્ષીઓનો અવાજ થતાં કોચૂયિત કુંડથી પાણીનો પ્રવાહ, ઘળઘળ અવાજ કરતો, ઉત્પન્ન થાય છે. (૩૩)

૭-કૃશેર (આખી), ૨ઉત્તરાષ્ટ્ર, ઉત્ત્રવાધ, એઓરિયા, પાયલગઢ, દૈલવાડા, ડેઝાવા, સાલગામ, તોરણ્ણા, ૧૦દુંદાઈ, ૧૧હેટમળ (માસગાંવ), ૧૨આરણ્ણા—આ ખાર ગામો સિરાણી સ્ટેટના અંગ્રેજ નક્ષામાં છે; પણ આખી અને માસગાંવ હોવા છતાં તેનાં નામ નથી, આ રીતે આણુ ઉપર ચૌદ ગામ છે.

૮- અચ્યલેશ્વરના મંદિરની આણુમાં મંદાકિની નામનો એક મોટો કુંડ છે. ચિતોડના કર્તીર્ણસ્તંભની પ્રશસ્તિમાં મહારાણા કુલાંશે (સં. ૧૫૦૬). આ કુલાંશે સીરાણીના મહારાણ પાસેથી જૂંટવી લઈ આણુ પર સત્તા જમાવી હતી. જુંશે શ્રી. અર્થુર પ્રાચીન નૈન લેખ સાઠોં લેખાંક ૨૪૪-૨૪૫) આણુ ઉપર કુંભસ્વામીનું મંદિર અને તેની પાસે આ મંદાકિની કુંડ બનાવાયાતું લખ્યું છે. તેથી સંભવ છે કે-મહારાણા કુલાંશે આ કુંડનો જુણોદ્ધાર કરાયો હોય (સીરાણી રાન્યકા ધતિહાસ પૃ. ૭૪). આ કુંડની લંબાઈ ૬૦૦ શીટ અને પહોળાઈ ૨૪૦ શીટ લગભગની છે. આવે વિશાળ કુંડ અન્યન ભાગે જ ડોરના જોવામાં આવ્યો હોય. આ કુંડને મંદાકિની અર્થાત ગંગા નહીં પણ કહે છે.

૯-શ્રાવણ-ભાદ્રવો, મંદાકિની, રેવતી કુંડ, (ટ્રેવર તાલ), સંત સરોવર, નાખી તલાવ, રામકુંડ, મદાહેવ નાલા, ગૌમુખી ગંગા વગેરે પ્રાચીન કુંડાં અને અરણુંઓએ છે.

૧૦-શ્રીક રામ સેલ્યુકસનો એકાંગી મેગાસ્થીનીસ (ઈ. સ. પૂર્વો ૩૨૦) માગથ દેશના મૌર્યવંશી રામ ચંદ્રગુમના સમયમાં આવ્યો હતો. તેણે હિંદુસ્તાન વિષે ધ્યાણ ફૂદીકરોમાં જણ્ણાયું છે કે આણુની પાસે સોના-દ્વારાની આણો હતી. (જુંશે મુખ્ય જેક્ષનીયર વે. ૧, ખાગ ૧. પાતું ૫૩૪)

[२००]

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ

[૧૫૮ ૬]

અહીં શ્રીમાતા, ૧૧અચ્છેશ્વર, ૧૨વસિષ્ઠાશ્રમ અને ભંડાંગિની વગેરે લૌકિક તીર્થી પણ છે. (૩૪)

આ મોટા પર્વતના અગ્રેસરો ૧૩પરમાર રાજનો હતા, અને લક્ષ્મીના લાંડાર સમાન

૧૧-અચ્છેશ્વર મહાદેવનું મોટું પણ ગ્રાચીન મંદિર છે. આમાં શિવલિંગ નથી પણ મૂળ ગલાગામાં વર્ચયે શિવજીના પગનો અંગૂઠો છે; જેની પૂજા કરવામાં આવે છે. હિંદુ દોડા અચ્છેશ્વર મહાદેવને આખુના અધિષ્ઠાત્રક દેવ તરીકે માને છે અને યૈણાણું રાજનોના પણ અચ્છેશ્વર મહાદેવ કુળદેવ મનાતા. જો કે હિંદુ ધર્મની માન્યતા પ્રમાણે આ મંદિર બાંધુ પ્રાચીન છે, પણ ધાર્યીવાર તેતો જીર્ણોદ્ધાર થયાનું જણાય છે. ચંદ્રાવતીના યૈણાણું મહારાવ લુંબાએ વિ. સં. ૧૩૭૭ માં અથવા તેની આસપાસમાં આ અચ્છેશ્વર મહાદેવના મંદિરના મંડપનો જીર્ણોદ્ધાર કરાયો હતો. આખું પરનું હેડુંણ ગામ અચ્છેશ્વરના મંદિરને અર્પણ કર્યું હતું. મહામાત્ય વસ્તુપાલ-તેજપાલ સંખ્યાંથી વિ. સ. ૧૨૬૫ પહેલાની એક શિલાદેવ આ મંદિરમાં લાગેબો હોવાથી આ મંદિરમાં તેમણે ડેઢ ભાગનો જીર્ણોદ્ધાર કરાયો. હોય એમ માનવાને કારણું મળે છે. મેવાડના મહારાવલ સમરસિંહના વિ. સં. ૧૩૪૩ ના એક દેખભાઈ આ મંદિર ઉપર સોનાનો ધ્વજાંડ ચઢાવ્યાનો ઉલ્લેખ છે. વિ. સં. ૧૪૬૮ ના એક દેખભાઈ રાણું લાખા, ડાંડાર માંડળું તથા કુંવર લાદાએ એક દોડાનું નિશ્ચલ ધાર્યોરાવમાં બનાવીને અચ્છેશ્વર મહાદેવને અર્પણ કર્યાની હક્કી-કૃત છે. આટલું મોટું નિશ્ચલ અન્યન લાયે જ જેવામાં આવે છે. આ અચ્છેશ્વરનું મંદિર મૂળ જૈન મંદિર હોવાનું અતુમાન હુર્ગાશંકર કેવળરામ શાલી, 'શુજરાત' માસિકના પુસ્તક ભારમાના ભીજા અંકમાં પ્રગટ થયેલ 'આખું-અર્ણુંગિરિ' નામના દેખથી જણાવે છે.

૧૨-દેવવાડાથી ૫ અને આખું કેંપથી ૪ માછલ દૂર વશિષ્ઠાશ્રમ છે. વર્ષે હતુમાન મંદિરથી નીચે સાતસે પગથિયાં જીતરી ગૌમુખ-ગૌમુખી ગંગા આવે છે. એથી શોટું કંની એથી જીતરતાં શ્રી. વશિષ્ઠાશ્રમ આવે છે. અહીં વશિષ્ઠ ઋષિના મંદિરમાં વર્ચયે વશિષ્ઠજીની મૂર્તિ છે, તેની એક તરફ રામચંદ્રજીની અને બીજી તરફ લદ્ધમણુજીની મૂર્તિ છે. તેમજ વશિષ્ઠજીની પતની અર્થધતીની અને કપિલ સુનિની પણ મૂર્તિ છે. આ મંદિરની સામે પિતલની એક બીજી મૂર્તિ છે, તેને ડાર્ઢ ધંદ્રની અને ડાર્ઢ આખુના રાજ પરમાર ધારાવર્ણની હોવાનું અતાવે છે. આ મંદિરમાં વશિષ્ઠનો પ્રસિદ્ધ અભિકુંડ છે. આ મંદિર, ચંદ્રાવતીના યૌધેણ મહારાવ-લુંબાળુના પુત્ર મહારાવ તેજસિંહના પુત્ર મહારાવ કાન્હડેવના સમયમાં (વિ. સં. ૧૩૬૪ની આસપાસમાં) બન્યું છે. આ મંદિરને મહારાવ કાન્હડેવે નીરવાડા નામનું ગામ બેટ કર્યું હતું. મહારાવ કાન્હડેવના પિતા તેજસિંહ જાયદા, જ્યાત્રુલી અને તેજસ્પુર (તેલપુર) આ નણ ગામે અર્પણ કર્યો હતાં અને મહારાવ કાન્હડેવના પુત્ર મહારાવ સામંતસિદ્ધ પણ હુંઠુંઘી, છાપુલી (સાપોલ) અને કિરણુથલા-આ નણ ગામે બેટ કર્યો હતાં.

૧૩-પરમાર વંશની ઉત્પત્તિ માટે આ પ્રમાણે અનેક પ્રકારની કથાઓ પ્રચલિત છે.

(૧) પદ્મગુમના નવસાહસાંક્યરિતના અગ્નિયારમા સર્ગમાં તેની ઉત્પત્તિનું વર્ણિત આ પ્રકારે છે.-“વિશ્વામિત્રે જે સમયે આખું પહોં પર વશિષ્ઠના આશ્રમથી ગાય ચોરાવી લીધી તે સમયે કુદ્દ થયેલા વશિષ્ઠે પોતાના મંત્રઅળથી એક પુરુષ ઉત્પત્ત કર્યો. તેણે વશિષ્ઠના

અંક ૫]

શ્રીઅધ્યુદ્ગુણ

[૨૦૧]

ચંદ્રાવતીખુરી ૧૪ તેમોની રાજ્યધાની હતી. (૩૫)

(ચાલુ)

શત્રુઓનો નાશ કરી નાખ્યો. એનું નામ ‘પરમાર’ રાખ્યું. સંસ્કૃતમાં ‘પર’ શત્રુને અને ‘માર’ મારનારને મારે કહેવાય છે.

(૨) પરમાર વંશના લેખોમાં પણ આની ઉત્પત્તિ આજ પ્રકારે હોવાની લખેલી છે. વિ. સ. ૧૩૪૪ના પાટનારાયણના ભંહિરથી મેળેબા એક લેખમાં પણ જણાવ્યું છે કે:- “આખુ પર્વત ઉપર વસિષ્ઠ પોતાના મંત્રણ દ્વારા અભિકુંઢથી એક વીરને ઉત્પન્ન કર્યો. જ્યારે તે શત્રુઓને મારીને વશિષ્ઠની ગાયને લઈ આવ્યો. ત્યારે મુનિએ પ્રસન્ન થઈને તેની જાતિનું નામ ‘પરમાર’ અને તેનું નામ ‘ધૌમરાજ રાખ્યું.’”

(૩) આખુ પરના અચલેખર ભંહિરમાંના એક લેખમાં પણ જણાવ્યું છે કે:- “ધર્મ કરતા વસિષ્ઠના અભિકુંઢથી એક પુરુષ ઉત્પન્ન થયો. તેને ‘પર’ અર્થાત् શત્રુઓને ‘માર’ અર્થાત् મારવામાં સમર્થ’ હેઠળે અભિગ્રહે તેનું નામ ‘પરમાર’ રાખ્યું.

(૪) ઉપરોક્ત વશિષ્ઠ અને વિશ્વામિત્રની લડાઈનું વર્ણન વાદિમક્રી રામાયણમાં પણ છે; પણ તેમાં નહિની ગાયથી પુરુષો ઉત્પન્ન થયાનું જણાવ્યું છે.

(૫) વિ. સં. ૧૦૭૦માં ધનપાદ કવિઓ રચેલી તિલકમંજરીમાં પણ અભિ કુંડથી જ પરમારની ઉત્પત્તિનું વર્ણન છે.

(૬) ‘ધતિહાસ-તિમિર-નાશક’ ભા. ૧ નામના અંથના કર્તા રાજ શિવપ્રસાદ જણાવે છે કે:- “જ્યારે ધાર્મિક વિધમણોનો અત્યાચાર બહુ વર્ધી ગયો. ત્યારે ખાલિણોએ અર્થુદ્ગરિ પર થત કર્યો અને મંત્રબલથી અભિકુંઢમાંથી ક્ષત્રિયોના ચાર નવા વંશ ઉત્પન્ન કર્યાં: પરમાર, સોલંકી, ચૌહાણ અને પદ્માર.”

(૭) ‘આધની-અકબરી’ના કર્તા અખુલ ઇજલે લખ્યું છે કે:- “નાસિતકાનો ઉપદ્રવ વધી ગયો. ત્યારે આખુ પહુંચ પર ખાલિણોએ પોતાના અભિકુંઢથી પરમાર, સોલંકી, ચૌહાણ અને પદ્માર. નામના ચાર વંશ ઉત્પન્ન કર્યો.”

૧૪-ચંદ્રાવતી આખુરોડ (ખરાડી)થી દક્ષિણ હિન્દુમાં ૪ માધ્યમ પર આવેલું છે. અત્યારે ત્યાં રાયારી, રાજ્યપુત, એકાત્મક વગેરેનાં ૪૦-૫૦ ખરાડાં બાબાં છે. પ્રાકૃત અંશોમાં “આ નગરીનું નામ ચંદ્રાવતી, તથા ચંદ્રાઉલી, તીર્થમાળામાં ચંદ્રાઉલી તથા ચંદ્રાવતી અને સંસ્કૃત અંશોમાં ચંદ્રાવતી વગેરે નામોનો ઉલ્લેખ જોવાય છે. આં ચંદ્રાવતી વગેરે ‘અષાદ્ધશશ્શતમંડલ’માં ગણ્યતાં, ગામની આસપાસ પડેલા ભગ્નાવણેથી દ્રગદ્વા દ્રગદ્વા તે નગરીની પ્રાચીનતા અને આખુના પરમારોની રાજ્યધાની હોવાથી તેની સમૃદ્ધિની શાખ પૂરે છે. ગુજરાતના મહારાજાઓના મહામંત્રીઓ વિમલશાહ, વસુપાદ અને તેજપાદના વખતમાં આ નગરીની જાહેરાતાલી પૂર્ણાશમાં હતી. વિ. સં. ૧૪૬૬ લગભગમાં રચાયેલી તીર્થમાળાના કર્તા [આ નોંધ આગલા રોડમાં આખુ પાનમાં પડી થાય છે.]

[२०२]

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ

[વર્ષ ૬

[૨૦૧મા પૃષ્ઠમાંની ૧૪મા નંબરની નોંધનો ભાડીનો ભાગ]

કવિ મેદે તેની સમૃદ્ધિનું વર્ણન કરતાં કહે છે કે:-

“નગર ચાડાલિના ગુણુ ધણા, ભવણુ અણારએ સર્જ જિન તણાં;

ચડાસી ચડુટે હિં હિર્ઝં, ડામિ ડામિ દીસર્જ ભુંદરીં.

મૂલનાયક શ્રીનાલિમહારાજ, જિણુ દીકંઈ મનિ હર્ષ અપાર;

કર્ષ પૂજ આવક મનિ હરી, નગર ચાડાલિ લંકા જિસી.

મેદેરચિત-તીર્થમાળા-કડી ૨૬-૨૭

વિ. સ. ૧૫૦૦ ની આસપાસના સમય સુધી ચંદ્રાવતી નગરીની જાહેરાતાલી સારી હતી, અને શીલવિજયજી રચિત તીર્થમાળાથી જણાય છે કે-વિ. સ. ૧૭૪૬ પહેલાં તેનું બાંગાણુ શરૂ થઈ ગયું હશે.

સોમધર્મ ગળિની હકીકત પ્રમાણે:-૪૪૪ આર્ડત પ્રાસાહો અને ૮૮૮ શૈવ મહિરો-વાળી ચંદ્રાવતીમાં આવીને ભીમરાજને મેાકલેલો વિમલશાહ ડોટવાલ (મંત્રી) રાજ્ય કરતો હતો. તેના અધિકારી પુરુષો ૮૪ હતા. અને ૧૨ પાદશાહોને જીતીને તેમનાં છત્રો લઈ લીધાં હતાં.

[જિનહર્ષની હકીકત પ્રમાણે-વિમલશાહે સિંહુરાજના દારણુ ચુંદુમાં તે રાજને મોઢી સહાય આપી હતી. પરમાર રાજ પણ તેના પરાભવની શંકાથી ગિરિદુર્ગમાં જાણે રહ્યા હતા. તેણે માલવાના રાજની સાથેના સંઅમાં ભીમરાજના સેનાપતિપદને પામી વિજય મેળગ્યો હતો. ત્રણ હિવસમાં સ્થથાન નામના રાજને હરાવી આંદી લીધો હતો. નર્દૂલ નગરના રાજને તેને સુવર્ણનું સિંહાસન આપ્યું હતું; ને ચોગીની(દીલ્લી)પતિએ તેને છત્ર આપ્યું હતું.” આ હકીકત પ્રમાણે ખાર પાદશાહોને જીત્યાની વિગત સાચી હૈ છે.]

મહામાત્ય તેજપાલની ધર્મપદી અનુપમાહેવી ચંદ્રાવતીના રહેવાસી પોરવાડ આવક ગાગાના પુત્ર ધરણિગની પુત્રી હતી.

કર્ણિલ ટોડ સાહેબ જણાવે છે કે:-સ. ૧૮૮૧ માં સર ચાહસ્ ડેલ્વિલ સાહેબ મિત્રો સહિત અહીં આન્યા તારે આરસપડાણુંના ૨૦ મહિરો જયેલાં હતાં; એની ચુંદર-તાની પ્રસંશા તેમણે કરી હતી.

આમ સમૃદ્ધિશાલિની ચંદ્રાવતી જેમ પરમારોની રાજ્યાની હતી તેમ, સીરાહી નહોતું વરણું તાં સુધી, દેવડા (ચૈદાણુ) રાજનોની પણ રાજ્યાની બની હતી. ત્યાર પણીથી ૧૨ તેની પણી થવા માંડી. જે કે તે પહેલાં તેના ઉપર ધણ્યાંય આકમણો અવાસનવાર થયા હતાં. મુંજ અને જોજના રાજકુવિ ધનપાલે સ. ૧૦૨૮ માં રચેલી ‘પાઠઅલિંગ્નામ-માળા,’ સ. ૧૦૭૦ માં રચેલી ‘તિલક-મંજરી’ કથા અને સ. ૧૦૬૧ પણીના સમયના ‘સત્યપુરમંડન મહારીશોત્સાહ’ નામના ટૂંકા કાવ્યમાં ચંદ્રાવતીના ધ્વંસનું વર્ણન કર્યું છે. “તુરડોએ શ્રીમાલ દેશ, અણુહિદ્વાઢ, ચંદ્રાવતી (ચંદ્રાવતી), સોરઠ, દેલવાડા અને સૌમેશ્વર એ અધાં રથનોનો નાશ કર્યો. એક માત્ર સાચોરના મહારીર મહિરેને તેઓ બાંગી ન શક્યા.” આ ચંદ્રાવતીની આસપાસના અત્યારનાં નાના મોઢાં ગામો ચંદ્રાવતીમાં સમાઈ જતાં હતાં.

‘શ્રામ્યમાતા’ અને ‘ઈક્ષુરસપ્રથ્યંધ’

સ્વ. રાજકુમિ કલાપીકૃત “શ્રામ્યમાતા” કાવ્ય અને શ્રી મેરુતુંગાચાર્યકૃત ‘પ્રથ્યંધચિતામણિ’ અથમાંના ‘ઈક્ષુરસપ્રથ્યંધ’ અંગે એક વિચારણા

માનવીની સારી ડે પોતી મનોભાવનાના પડ્ધા, ‘દ્વાનત એની અરકન્ત’ એ ન્યાય પ્રમાણે પડ્યા વગર રહેતા નથી; અરે, પાર્થિવ-જડ વરસુ ઉપર પણ એ ભાવનાની અસર થયા વગર નથી રહેતી; આ વરસુ સ્વ. રાજકુમિ કલાપીએ પોતાના ‘શ્રામ્યમાતા’ નામક ટૂંકા કાવ્યમાં અતાવી છે. ઇસ્ત્વાસન ૧૮૬૫માં રચયેલ એ કાવ્યગત કથા આ પ્રમાણે છે—*

શિયાળાની એક સવાર, મંદ મંદ પવન વાઈ રહ્યો છે. વૃદ્ધ માતા, પિતા શેલડીના જેતરમાં શગડી પાસે એસી તાપી રહ્યાં છે. બાળકો આસપાસ રસી રહ્યાં છે. આ વખતે એક ઘોડેસ્વાર એ જેતરમાં આવી પહુંચે છે અને પોતાની રૂષા ધીપાવવા પાણીની ભાગણી કરે છે. ભલી લોળી વૃદ્ધ માતાનું હૈસું હ્યાની લાગણીથી ભોખરાય છે અને તે પાણી આપવાના બદલે એ યુવાનને શેલડીની પાસે લઈ જય છે અને શેલડીની એક કાતળામાં જરાક છરી મારે છે એટલામાં આપો ખાલો રસથી છલોછલ લરાઈ જય છે અને એ ખાલો યુવાનને આપે છે. આ દશ જોઈ એ યુવાન ડાંડક વિચારમાં પડી જય છે અને એ વિચારમાંને વિચારમાં વૃદ્ધ માતાએ આપેલ રસ પી જય છે. અને થીને એક ખાલો ભરીને

*આ કાવ્ય બહુ મોહુ નહીં હોવાથી તેમજ આ સંબંધી વિચાર કરનારને ઉપયોગી થઈ પડે એ આશયથી અહીં આપવામાં આવે છે:—

બોગ છે સુરખી ભરી રવિ મૃદુ હેમન્તનો પૂર્વમાં,
ભૂરું છે નભ સ્વચ્છ સ્વચ્છ હિસતી એક નથી વાદળી;
થડો હિમલગો વહે અનિલ શો ઉત્સાહને પ્રેરતો,
ને ઉત્સાહ ભરી હિસે શુક ઉરી ગાતાં મીઠાં ગીતડાં ! (૧)

મધુર સમય તેવે એતરે શેલડીના, રમત કૃષિવલોનાં ખાલ નહાનાં કરે છે;
કમલવત ગણોને ખાલના ગાલ રાતા, રવિ નિજ કર તેની ઉપરે ફેરવે છે ! (૨)

વૃદ્ધ માતા અને તાત, તાપે છે શગડી કરી:

અહો ! કેવું સુખી જોડું, કર્તાએ નિરમ્યું દિસે ! [૩]

તાં ધૂલ દૂર નજરે ઉડતી પડે છે, ને અથ ઉપર ચડી નર ડાઈ આવે;
ટાળે વળી મુખ વિકાસી ઉભાં રહીને, તે અથને કુતુહલે સહુ ખાલ જોતાં ! [૪]

ધામે ઉરી શિથિલ કરને નેત્રની પાસ રાખી,
વૃદ્ધ માતા નયન નયળાં ફેરવાને જુવે છે;
ને તેનો એ પ્રિય પતિ હજુ શાન્ત એસી રહીને,
જેતાં ગાતો શગડી પરનો દેવતા ફેરવે છે ! [૫]

[२०४]

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ

[વર્ષ ૬]

રસ આપવાની વિનંતિ કરે છે. ધરડી માતા એક પણી એક કાતળી ઉપર થા કર્યો. જન્ય છે, પણ એક કાતળી રસ નથી આપતી. માતા ગળગળી થઈ જન્ય છે. ક્ષણચાર પહેલાં રસનો ધોધ વહીવતી શેલડીને ખોળ જ ક્ષણે આ શું થયું ? માતા સુઅવણુમાંને સુઅવણુમાં બોલી ભરો છે: “કં તો ધરતીમાતાનું ધાપણું સુકાઈ ગયું છે અને કં તો આ દેશના રાજની દ્વારા મરી ગઈ લાગે છે, એમ ન હોય તો આવું ન અને.” વૃદ્ધાના આ શખ્ષોથી યુવાન ચ્યામકી ભરો છે અને પશ્ચાત્તાપ કરતો હોય એમ કહે છે: “મારી, એ પાપ મારું છે, હું જ આ દેશનો રાજ છું. શેલડીમાથી રસનો ધોધ વહેતો જેઈ મારી દાનત અગડી હતી. મને થયું કે આવા સુખી માનવીએ પાસેથી વધારે કર કં ન લેવો ? પણ મા, હવે એ મારી પાપવાસના ઓસરી ગઈ છે. હવે તમે ઇરી કાતળી કાપો, જરૂર રસથી ખાલું છલકાઈ જશો.” અને વૃદ્ધ માતાએ ઇરી કાતળીમાં છરી લગાવી કે ખાલું રસથી ઉલ્લાઘ ગયું.

કલાપીએ તા. ૧૯-૮-૬૪ના રોજ પોતાના એક સ્નેહોને લખેલ પત્રમાંના ઉલ્લેખ પ્રમાણે મહાકવિ વર્દસવર્થની “Goody Blake and Harry Gill” (ગુડી બ્લેક એન્ડ ગિલ) હેઠળ

ત્યાં તો આવી પહોંચ્યો એ, અથ્વ સાથે યુવાન ત્યાં;
કૃષિક એ હું ત્યારે, “આવો, બાપુ !” કહી ઉભો. [૬]

“લાગી છે મુજને તૃપ્તા જલ ભરી હે તું મને” એલાને,
અર્વેથી ઉત્તરી યુવાન ઉલ્લિને ચારે દિશાએ જુવે;
“મીહો છે રસ ભાઈ ! શેલડી તણો” એવું હ્યાથી કહો,
માતા ચાલી યુવાનને લઈ ગઈ ન્યાં છે ઉભી શેલડી ! [૭]

ખાલું ઉપાડી ઉલ્લિ શેલડી પાસ માતા, છુરી વતી જરીક કાતળી એક કાપી;
ત્યાં સેર છૂટી રસની ભરી પાત્ર દેવા, ને કે વિચાર કરતો નર તે ગયો પી. (૮)

“ખીનું ખાલું ભરી હેને, હજુ છે મુજને તૃપ્તા,”
કહીને પાત્ર યુવાને, માતાના કરમાં ધર્યું. (૯)

કાપી કાપી ઇરી ઇરી અરે ! કાતળી શેલડીની,
એક બિન્હુ પણ રસતાણું કેમ હાવાં પડે ના ? !
“શું કોણો છે પ્રભુ મુજ પરે ? ” આંખમાં આંસુ લાવી,
એલી માતા વળી ઇરી છુરી ભેંકતી શેલડીમાં. (૧૦)

“રસહુન બરા છે, હ્યાહીન થયો નૃપ ;
“નહિ તો ના અને આવું,” એલી માતા ઇરી રહી. (૧૧)

એવું યુવાન સુણતાં ચ્યામકી ગયો ને, માતાતણે પગ પડી ઉફીને કહે છે;
“એ હું જ છું નૃપ, મને કર ભાડ્ય ખાઈ, એ હું જ છું નૃપ, મને કર ભાડ્ય ઈશ ! (૧૨)
“પોતાનો રસ મિષ હું પ્રભુ અરે ! ત્યારે જ ધાર્યું હતું-
“આ લોડો સહુ દ્રવ્યવાન નકી છે એવી ધરા છે અહી;
“છે તોણે મુજ લાગ કે નહિ સમો તે હું વખારું હવે,
“શા મારે અહુ દ્રવ્ય આ ધનિકની પાસેથી લેવું નહિં ? [૧૩]

અંક ૫]

‘આભ્યમાતા’ અને ‘ઈંદ્રિયરસપ્રભાધ’

[૨૦૫]

જીથી) કૃતિ બહુ રસમય લાગ્યાતું લખ્યું છે. આ કૃતિમાં વણુંબેલી કથા આ પ્રમાણે છે. x
શુરી જ્લેક નામની એક ડોશી હેરી જીલ નામના પુરુષની પડોશમાં રહેતી હતી. ડોશી દરિદ્ર હતી અને હેરી સારી સ્થિતિમાં હતો. ઠેરીના દિવસોમાં કાદ્ય કાદ્ય વખત તાપણું માટે શુરી જ્લેક હેરી જીલની વાડમાંથી લાંકડાં ઉપાડી જતી. એક વખત જીલ આ જેઠ ગયો એટલે તેણે એ ઘરડી દરિદ્ર ડોશીને ધમકાવી. આથી એ ગરીબ ડોશીની આંતરરી કંઈળી જરી અને એ હૃદયબ્યથામાં તે હેરીને શાપ દઈ એડી : “હે પ્રભુ તું બધું સાંલગે છે, આ માણુસને કહી ગરભી ન મળશો!” અને જણે એનો શાપ સાચો પણો હોય તેમ ખરેખર જીલ ચંડો થઈ ગયો. ગમે તેટલા ગરભીના ઉપચાર કરે, ગમે તેટલા કોટ પહેરે પણ એની રાદ બેડે જ નહીં.

આભ્યમાતામાં કે ભાવનાનો વણુંટ લરેલો છે લગભગ એવી જ અથવા તો કંઈક એના કરતાં વધુ ઉદ્દેશબરી ભાવના આ કથામાં વણુંયેલી દેખાય છે. કલાપીએ વર્ડસવર્થની એ કૃતિ ચોતાને પસંદ પણાતું ૧૯-૮-૧૯૬૪ના પત્રમાં લખ્યું છે અને ‘આભ્યમાતા’નું કાય તેમણે ૧૪-૧૦-૧૯૬૪પના દિવસે રચ્યું છે. એટલે સાંલગ છે કે ‘આભ્યમાતા’માં ગીલ-રાતી ભાવનાનો અંકુર તેમને વર્ડસવર્થની ઉકાન કૃતિમાંથી લાધ્યો હોય અને જણે દદાડે એ અંકુર વિકસિત થઈને ‘આભ્યમાતા’ ઇથે અવતાર પામ્યો હોય !

પણ એ ભાવનાના આત્માની આસપાસ ને કલેવર મધ્યમાં આવ્યું છે એ-શેખડીને સંદ્રભાવ ફૂર્ઝાવતી ભાગ્યાના પ્રતીકૃપે સ્વીકારવાતું-કલાપીને કયાંથી સૂર્યાંથું એનો નિર્ણય કરવાતું આપણી પાસે કશું સાધન નથી.

આમ જીતાં આ પ્રસંગે લગભગ ‘આભ્યમાતા’ જેવાં જ આત્મા અને કલેવરને ધારણું કરતી અને આજથી લગભગ છેસેથી ય વધુ વર્ષ પહેલાં રચાયેલી સંસ્કૃત ભાષાની એક કૃતિનો લિચાર કરેલો સુયોગ થઈ પડ્યો. આ કૃતિ તે વિકિમ સંવત ૧૩૬૧માં નૈન મુનિપુર્ગવ શ્રી મેરુતુંગાચાર્યનિરચિત ‘પ્રભુધ્વચિન્તામણું’ અંથમાનો ‘ઈંદ્રિયરસપ્રભાધ’. આ ‘ઈંદ્રિયરસપ્રભાધ’ શ્રી સિંદી નૈન અંથમાળાના પ્રથમ અંથ તરીકે પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવેલ ‘પ્રભુધ્વચિન્તામણું’ અંથના ૪૮ મા ખાને છપાયેલ છે. ‘પ્રભુધ્વચિન્તામણું’માં રાજન ભોજને લગતા ને પ્રભુધ્વા આપવામાં આગ્યા છે તેમાં જ આ ‘ઈંદ્રિયરસપ્રભાધ’ આપેલ છે, જણે કે એ રાજન ભોજના જીવનનો એક પ્રસંગ ન હોય ! એ ‘ઈંદ્રિયરસપ્રભાધ’ગત કથા આ રીતે છે-

રાતનો વખત હતો. રાજન નગરચ્ચાર્યા જેવા ફરવા નીકલ્યો હતો. તેની સાથે તેના એક ભિત્ર સિવાય ભીજું કાદ્ય ન હતું. ફરતાં ફરતાં રાજને તરસ લાગી. રાજનએ વિચાર્યું : આવા રાતના વખતે પાણી માટે ડાને ત્યાં જવું ? એટલે વિચાર કરીને તેણે એક વેશ્યાના

“ રસે હવે હે ભરી પાત્ર બાઈ ! પ્રભુ કૃપાએ નકી એ ભરાશે ;

“ સુખી રહે બાઈ ! સુખી રહો સૌ, “ તહમારી તો આશિષ માત્ર માણું ! ” [૧૪]

ચ્યાલું ઉપાડી ઉલ્લિ શેલડી પાસ માતા, છુરી વતી જરી જ કાતળી એક કાખી ;

તાં સેર છૂટી રસની ભરી પાત્ર ટેવા, બહોળા વહે રસ, અહો ! છવનારી પ્યાલું ! [૧૫]

x આ હાડીકત શ્રી નવવરામ વિચેદી સંપાદિત ‘આભ્યમાતા’ અને બીજાં કાંઈ

પુસ્તકમાંથી સાલાર મેળવી છે.

[२०५]

श्री जैन सत्य प्रकाश

[वर्षे ६]

धरमां प्रवेश कर्यो अने पोताना मित्रनी मारहृत पाणीनी मागण्ही करी. वेस्याना हासी उभ-
णकाले भाणीना अद्वेशेवीनो रस लावना गृह. पणु तेने पाणी इतां वार थध अने
ज्यारे ते रसने लेटा भरीने पाणी इरी व्यारे तेनुं मुख उद्दास थध गयुं हुतु. राजना
मित्रे आ उद्दासीनतानुं कारण पूछयुं एट्ले हासी ऐली : “पहेलां तो शेवडीने जराक धा
करीने के एक ज सांडामांथी क्षुणुभरमां रसनो घडा भराई जतो होतो. हवे अहोंना राजनुं
हैयुं ईयतविरोधी थयुं लागे के एक आने भांडमां एक वाटक जेटलो ज रस नीडल्यो.
आ विचारथी मारुं मन उद्दास थध गयुं के.” हासीनां आ वयनो राजना
डाने अथडायां. ते पोतानुं अंतर शेवावा लाग्यो. तेने जणे हासीनां वेणु
साचां होय एम लाग्युं. तेणे जेयुं के—“आने शिवमहिरमां एक व्यापारीने मोरुं
नाटक करायुं ते वर्षते तेने लूटी वेचानी प्रलीवरोधी लावना भारा हृष्यमां उत्पन्न
थध होती. साचे ज भारा ज पापे आ शेवडी सूक्ष्म गृह.” आ पहिं राज पोताने भेळेले
जध सूर्ख गयो. इरी वर्षत पोताना हैयामां प्रलीवात्सव्यनी लावना भावतो ए राज ए ज
वेस्याना वरे गयो. त्यारे हासी ऐली : ‘आने जरूर आ देशनो राज प्रलीवात्सव्यवालो
थयो लागे के, आने शेवडीमांथी घूरु रस नीडल्यो के.’ आ सांखणी राज सन्तुष्ट थयो.*

‘धक्षुरसप्रथ’ अने ‘आभ्यमाता’ना आत्मा अने क्लेवरमां डेलुं वधुं साभ्य !
पहेली तडे जेनारने पणु एम ज भानवातुं मन थध जय डे—जणे एक ज आत्माए
जुहा क्लेवरहृषे इरी अवतार धारण कर्यो होय ! अने सौथी वधु घूम्हीनी हृषीकेत तो
ए के डे राजकवि क्लापीने पोतानी आ दृतिनुं पहेलुं नाम ‘शेवडी’ राग्युं हुतुः
‘आभ्यमाता’ तो एमणे पाणीथी अद्वेलुं नाम के. आम नाम, क्लेवर अने आत्मा
नणेनुं एक्सरभापणुं जेया पहिं सहज रीते पहेलाना आधारे जीननी वरना थवातुं
भानवा मन नथी लक्ष्याधि जतुं ?

आम छां ए लाक्ष्य रोडनी पहे के, राजकवि क्लापीने ‘धक्षुरसप्रथ’ जेया
पहिं ‘शेवडी-आभ्यमाता’नी रथना करी हो ऐयुं भानवानो पुरावो न मणे त्यांसुधी
‘आभ्यमाता’ने ‘धक्षुरसप्रथ’ना अवतार इपे स्वीकारयुं ए दुःसाहस ज गण्याथ !

*आ ‘धक्षुरसप्रथ’ भूमि संस्कृतमां आ प्रभाषे के—

अथान्यदा मित्रमात्रसहायो नृपतिर्निशि परिभ्रमन् पिपासाकुलतया
पणरमणीगृहं गत्वा मित्रमुखेन जलं याचितवान् । ततोऽतुच्छवात्सल्याच्छम्भल्या
दास्या कालविलम्बेनेक्षुरसपूर्णः करकः सखेदमुपानीयत । मित्रेण खेदकारणे
पृष्ठे—‘एकस्यामिक्षुलतायां शूलेन भित्यमानायां पुरा रससम्पूर्णः सवाहटिको
घट आसित; साम्प्रतं तु प्रजासु विरुद्धमानसे नृपे चिरकालेन केवला वाहटिकैव
भूतेति खेदकारणम् । नृपस्तत्वेदकारणमाकर्ण्य केनापि वणिजा शिवायतने
महति नाटके कार्यमाणे तल्लुण्डनचित्तमात्मानं विमृश्य तद्वचस्तथ्यमेवेति
मेने । ततो व्यावृत्य स्वस्थानमासाद्य निद्रां सिषेवे । अपरेतुः प्रजासु सञ्चातकृपो
नृपः पण्याङ्गनागृहं गतः । तदा च तयाऽद्य प्रजासु बत्सलो नृपतिः प्रचुरेक्षुर-
ससङ्केतादिति व्याहरन्त्या राजा तोषितः ।

अंक ५]

‘आभ्यमाता’ अने ‘क्षुरसप्रथम्’

[२०७]

आ विषयनो २८ धरावता विदानो। आ संबंधी वधु विचार करे अने ए विचारना अंते कंठ जाणुवा केवुं जाणुय तो जाहेर करे एटली आशा अस्थाने नहीं गण्याय. अस्तु!

प्रस्तुत लेख साथे आस संबंध नहीं होवा हतां, प्रस्तुत लेखमां उलिक्षित कृति-आमां केवी लावना भरी के एवीज लावनाशी सलग एवी जोडाई-ए वातो लभवानी धृच्छा नक्ती राक्षी शकाती, अने ते ए आशा साथे के ए वातो शेडे धरें अंशे पणु आ लेख माटे शेबाढप ज थेय!

पहेली वात तो आपणामां अहु प्रसिद्ध एवी, एक डोसी अने सांतुष्टी-स्वारनी वात के.

उनानो वापत हुतो. अण्यलतु^१ मध्याह्न थयुं हटु. धरती घोम धमती हुती. एक डोसी अने तेनी जुवान दीकरी भिने गाम जतां हतां. माथे सामानतुं पेटलुं अने भायुं क्षारी जय एवो ताप! मानुं हेयु दीकरीनी द्याथी द्रवतुं हटु. एट्यामां एक सांतुष्टीस्वार त्यांशी नीकल्यो. तेने थेबानीने डोसी एवी: “आध! मारा उपर थेडी हवा न करो? मारी आ दीकरीने तमारी सांतुष्टी उपर एसारी गेवा गाम सूधीं तमारी साथे न वेता जव?” पणु सांतुष्टीस्वारे सांबलयुं क्षर्युं अने ते यालतो थेयो. शेडे हूर गया पक्षी ए स्वारने विचार थेयो: “अरे, हु केवा मूर्मो के आवो भोड़ा: हाथथी गुमाव्यो! डोसीनी दीकरीने एसाडी लीधी होत तो ए जुवान स्त्री अने तेनी साथेनो सामान ए वधुं य लघते हु यालतो थध जत अने डोसी लाथ वसती रहेत! ऐरे, हणु क्यां वळुं गयुं क्षे! थेडी वार थेलुं एटदे डोसी आवी पहेंचेसो.” अने ए स्वार थेडी वार थेला गयो. थेडी वारमां डोसी आवी पहेंची. डोसीने आवेली लेळने स्वार पश्चात्ताप करतो होय एम एवी उड्यो: “माडी, मारी भूल थध! एमां भने शुं अण पुडवातुं हटु! लावो, तमारी दीकरीने एसारी लड्या!” अने एक क्षण्य पणु विचारना थेब्या विना डोसीने जवाब आयो: “ना आध, जे तने कडी गया ते भने य कडी गया क्षे. आध, हवे भारे मारी दीकरीने सांतुष्टी उपर नक्ती एसारवा.” अिचारा स्वार वीले महेंचे यालतो थेयो.

लक्षी डोसी, तने ए वात क्षाणु कडी गयुं!

आवी ज एक वार्ता आ सुगना भद्रान इक्षुक रशियन भद्रात्मा टॉल्स्टॉये लभी के. ए वार्ता संक्षेपमां आ प्रभाषे क्षे.^२

एक दिवस केटलांक वालों कातरमां रभतां हतां त्यारे तेभने अनाजना दाणुना आकाशनी अने लीभु^३ जेवडा कहनी एक नीज जडी. पासेथी एक मुसाइर पसार थतो हतो तेणु एक पैसो आपाने ए नवतर लागती नीज अरीही अने शहेरमां जाहुने राजगृहनी पासे रणु करी.

१ भद्रात्मा टॉल्स्टॉयनुं साहित्य मूले रशियन भाषामां क्षे. प्रस्तुत वार्तानो संक्षेप ‘Twenty-Three Tales By Leo Tolstoy’ (टॉल्स्टॉयनी त्रेवीस वार्तांचो) नामक अचेंगु पुरतक उपरथी लभ्यो क्षे. आ कथा भ. स. १८८६मां लभाई क्षे.

२ भद्रात्मा टॉल्स्टॉये आ कथातुं मथातुं ‘भरवीना धाडा जेवडा अनाजने दाणु’ ए मतवायनुं शास्त्र्युं क्षे एटले आ स्थगे मूणमां ‘क्षीभु’ना स्थाने ‘मध्यीतुं धुङ्कु’ लघेत क्षे. पणु आपणा वातावरणने भणतुं लागे ए हजिचे अहीं ‘क्षीभु’ मूळ्युं क्षे.

आवी अज्ञयम् चीज थुं हो? जे जाणुवा राजग्रे पोताना पडितोने ऐलान्ना.. पडितोअ घूम घूम विवार कर्हो पथु तेओ. ए चीजने न ऐण्झी शक्या. छेवटे एक दिवस एक भरवी ए चीज पासे जध चडी अने 'पोतानी चांच मारीने तेणु काण्डु पाडी नाख्यु. आ जेधने पडितोए निर्णय कर्हो के ए अज्ञयम् चीज एक अनाजनो दाण्डा छे. तेमणे राज पासे जधने ए वातनी घमर आधी. पथु आथी तो राजग्रनी निज्जासा शांत थवाना अहो वधु तीव अनी. तेमने थयुः आवडो मेटो लाङ्कु जेवडो 'ते अनाजनो दाण्डा होध शक्त अरो? क्या देशमां अने क्या वभतमां आवडुं मेटुं अनाज पाक्तुं हो? पडितो वधु मुउत्तमां पडया, तेमनी अफ्ल कम करती न हती!

आथी राजग्रे पोताना सिपाहीओने आजा करी के आपणु राज्यमां के धरडामां धरडो ऐकूत होय तेने भारी पासे रज्जु करो! आवो एक धरडो ऐकूत भण्णा आवता तेने राजग्र पासे धाज्जर करवामां आओ. भिन्नारो डोसो! कमरथी वणी गयो हतो. अना दांत पडी गया हतो. तेना वाणि पुण्यां जेवा थर्थ गया हता. अने ए टेकानी महद्वी ए मांडमांड डग्लां उपाडी शक्तो हतो. तेनी आप्याय निस्तेज अनी गाँध हती.

राजग्रे डोसाना दांथमां अनाजनो दाण्डा आधीने पुछ्युः; "हाह, आवडुं मेटुं अनाज तमे एतरमां कही वाव्युं अथवा अन्नरमांथी अरीघ्युं छे?" डोसो. भद्वा मुख्केलीथी सांबणा शक्तो हतो. तेणु छेवटे कह्युः; "ना आपणु, आवडो मेटो दाण्डा भें न तो. कही वाव्यो. छे के न कही अरीघ्यो छे. अभारा वभतमां तो आने भगे छे तेवडुं ज अनाज भग्तु हतु. पथु भारा पिताश्रो जे अत्यारे ह्यात छे ते क्षाय आपते कंध वधु घुलासो आधी शक्ते."

अट्टें राजग्रे ए डोसाना वापते ऐलावी भंगाव्यो. ए डोसो अना हीकरा करतां कंधक वधु तंहुरस्त हेखातो हतो. यालवामां तेने एक ज टेकानी जडर पडती हती. राजग्रे तेने पेलो अनाजनो दाण्डा अतानीने पूछ्युः; "हाह! आवडुं मेटुं अनाज क्या देशमां अने क्यारे पेला थतुं हतु?" तमे आवुं अनाज कही वाव्युं के अरीघ्युं छे?" डोसाए कह्युः; "ना, भें आवुं अनाज कही वाव्युं नथी. अने आप अरीहवानी वात करता हो तो-अभारा वभतमां कशी चीज अरीहाती के वेचाती ज न हती. ए वभतमां तो चैकानी ज हरती न हती. सौ पोतपोतानो पाक एतरमां उत्पन्न करता हता अने जडर पडे त्यारे एनाथी ज अहोलो करवामां आवतो हतो. आकी-अभारा वभतनुं अनाज अत्यारना अनाज करतां वधु मेटुं अने वधारे कसवाग्नुं हतुं ए साच्युं छे, छनां आवडुं मेटुं तो नहीं ज! भारा पिताश्री एम कहेता हता के तेमना वभतमां अनाजनो दाण्डा अभारा दाण्डां करतां वधु मेटो उपज्जो हतो. आपते योग्य लागे तो तेमने ऐलावीने आप पूछ्यी शक्तो छो!"

राजग्रे ए त्रीज डोसाने ऐलावी भंगाव्यो. आ डोसो पडेलां अने करतां वधु तंहुरस्त जाणुतो हतो. तेने यालवामां टेकानी जडर नहेती पडती. तेनां कान, दांत अने आंग्सो साखुत हतां. राजग्रे तेने पेलो अनाजनो दाण्डा आग्यो अने पूछ्यु अट्टें डोसाए ज्याय आग्यो; "धणा हिवसे आवुं सुंदर अनाज हुं इरी जेध शक्ये छुः." तेणु ए दाण्डाने चाखी जेयो. अने ते इरी ऐलवा लाग्यो. "अगायर, आ ए ज अनाज छे!"

અંક ૫]

‘આમ્યમાતા’ અને ‘ઇક્ષુરસપ્રભ’

[૨૦૮]

રાજજીવની ઉસુકતા વધી ગઈ, ડોસા બોલતો હતો : “મારા વખતમાં આવું અનાજ દરેક ટેકણે જીપજું હતું, અમે આવું જ અનાજ ખાતા અને વાવતા હતા.” રાજજીવને પૂછ્યું : “પણ, આવું અનાજ તમે કયાંથી ખરીદ કરતા હતા?” ડોસા બોલી જાગે : “ખરીદવું! રામ રામ રામ! અમારા વખતમાં તો અનાજ-શૈદી વેચતી એ મોટામાં મોટું પાપ લેખાતું; પૈસાને તો અમે ઓળખતા જ ન હતા. સૌ સરખા હતા. કોઈ કાઢતું ઉપરી ન હતું. આ વિશાળ પૃથ્વીનો કોઈ એક માલિક ન હતો. મન માને ત્યાં હું જેતી કરતો અને મારું લાભ રહ્યો!”

રાજજીવને પૂછ્યું : “ભક્તા ડોસા ! પણ તે કણે પૃથ્વી આવું અનાજ શાથી ઉત્પન્ન કરતી હતી અને હવે નથી કરતી તેતું તેમજ તારી કરતાં તારી દીકરો વધુ નથ્યો. છે અને એના કરતાં ય એનો દીકરો—ને તમારા નગેણમાં સૌથી એધી ઉમરનો જે તે-વધુ નથ્યો. છે તેતું શું કારણું?

અને ધરડા ડોસાએ ટઠાર થએ જવાબ આપ્યો : “આવું કારણું એ છે કે—માણસ હવે હાનતનો ચોર અને હાડકાંનો હરામ થયો. છે. માણસમાં પારકાતું પડાવી લેવાની વૃત્તિ જગી છે અને મહેનત કરી રોડી રહ્યાની ભાવના ઓસરી ગઈ છે. માનવીની અદ્ધાનતે પૃથ્વીના રસકસ શોષી લીધા છે અને હરામ હાડકાંની ભાવનાએ માનવીનાં શરીરોના રસકસ ચ્યૂસી લીધા છે. પ્રભુ, તે કણે એમ નહોંતું થતું; ત્યારે ધરતીમાતા આવું અનાજ આપતી હતી!”

ઉપરની અવી વાતો કરતાં આમાં વધુ ઉદ્ઘાર ભાવના જરી છે એ સહજ સમજ શકાય એમ છે.

જે ભાવના આજથી ૫૦૦-૭૦૦ વર્ષ પહેલાં આર્થિવર્તના એક મહર્ષિએ આલેખી, તે જ ભાવના અત્યારે આર્થિવર્તભાં એક રાજકિયિં અને આર્થિવર્તથી હજરો માધ્યમના અંતરે એક મહાકવિ કે એક મહાતત્વજ્ઞાનીએ આલેખી એ એ અતાવે છે કે માનવહૃદયની ભાવનાઓ દેશ કે કાળના અંતરને કહી પિછાનતી નથી. મેરુતુંગાચાર્ય જેવા સાધુપુંગવ, કલાપી જેવા રાજકિય, વર્દસવર્થ જેવા મહાકવિ અને ટોલ્સ્ટોય જેવા મહાકિલસુસ્કેને ડોલાવનાર તે ભાવના કેટલી પ્રણા હશે? નથી લાગતું કે-એ ભાવનાને આલેખતી આ વાતાઓએ અલે કલેવરે વામન લાગતી હોય પણ તેમાં ‘ગાગરમાં સાગર’ જેવું સત્ય રહેલું છે?

પણ એક વાત મનને સુંજરે છે: એક રાજની હાનત અગડે અને શેખડીનો રસ ઊડી જય; માનવીની ભાવના અગડે અને ધરતીનો રસકસ ઓસરી જય; એક ડોસા બોલીનાએ અને જુલ થડો થઈ જય—આવું તે શરીરે અની શકે? પણ આનો ઉકેલ નરી ઝુદ્ધ ન લાવી શકે. એને સમજના માટે હૃદય રોધવું જોઈએ ‘હિલબર હિલ’ કે ‘હાનત એવી અરક્ત’ એ હૃદયનો વિષય છે. ઝુદ્ધની નિશચી એને ન પહોંચી શકે!

—અને આપણા ઋષિમુનિએઓ પણ ક્યાં નથી કહેતા ગયા—મન એવ મનુષ્યાનાં કારણ બંધમોક્ષયો : । કુઝવું એ તો દરેકની પોતાની મરજીની વાત છે જ, પણ તરવારનો કિમિયો. પણ કુદરતે દરેકના પોતાના હાથમાં જ મૂક્યો. છે. આ કિમિયો તે નિર્મણ હૃદય !

દત્તિલાલ દીપચંદ હેસાઈ

આપણી જ્ઞાનપરખો

દેખક-શીખુત કેશવીંહ હીરાંથે અવેરી

‘શ્રી નૈન સત્ય પ્રકાશ’ માસિક પત્રના વર્ષ ચોથાના અંક ૧૦-૧૧ (સંયુક્ત અંક) માં અને વર્ષ પાંચમાના અંક ૧ માં ઉપર લખેલ ભથાળા હેડલી ડેટલાક બંડારેનાં નામોનું સૂચિપત્ર રજુ કર્યું હતું કેમાં ઉપલબ્ધ સ્થાનો તરફ કૃષ્ણ જ્ઞાનબંડારેનાં નામો તથા લગભગ ૪૫ ગામોનાં નામોનો નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો હતો.

આ સુરતના શ્રી નૈન સાહિત્ય ઇંડ દ્વારા પ્રકાશિત થયેલ, સુરતને અંગે ત્રણ ચૈતિહાસિક અથે જ્ઞાનબંડારેને બેટ આપવાની ચોજનાના લાલથી નીચેના વધુ જ્ઞાન બંડારેનાં નામો જાણવામાં આવ્યાં છે એ અને રજુ કરવામાં આવે છે.

શ્રી જ્ઞાનબંડાર,	લુણાવાડ.
શ્રી શાંતિચંદ્ર સેવાસમાજ,	અમદાવાદ.
શ્રી નૈન પુરુષકાલય,	પોસ્ટ બીલપાડ
	વાચા આંકલાવ.
શ્રી નૈન જ્ઞાનબંડાર,	અલીરાજપુર.
શનેન્દ્ર નૈન મૃહિત	
જાનબંડાર.	આહેર. વાચા
	અરનપુરા.
જિનરાજ પુરુષકાલાંડાર,	ડાલહાપુર.
જાનમહિર,	લોપાલ.
"	ગવાડા.
"	નોંધણુવહર.
ધર્મભક્તિ જ્ઞાનમહિર	સમી
જાનમહિર	બાલીઆસણ
શ્રી સાગર નૈન લાયબેરી	મરોલી
શ્રી નૈન જ્ઞાનમહિર	સરહારપુર

યુદ્ધસાગરસ્વરિ જ્ઞાનબંડાર	આનેલ
દર્ષસુરિશાસ્ત્ર સંગ્રહ	પાટણ
નૈન વૃદ્ધિવિજ્યામૃત	અમરેલી
વડવા મિત્ર અંડલ પુરુષકાલય	લાવનગર
શ્રી નૈન લાયબેરી	આખરેચી
શ્રી નૈન જ્ઞાનબંડાર	સાંગળપુર
	વાચારી (૫૨૭)
"	અચાઉ "
"	બોરારા "
"	અદ્દા "
શ્રી નૈન જ્ઞાનબંડાર,	મોરવાડ વાચા
	રાધનપુર
પદ્માવતી નૈન પુરુષકાલય,	બાલમેર
નૈન યુવકસંધ પુરુષકાલય	મુંઘઠ
શ્રી નૈન જ્ઞાનમહિર	હળવદ

બેટ આપેલ સુરત સર્થાંધી ત્રણ પુરુષકાલાંનાં નામ-

- (૧) સર્થપુર અનેક નૈન પુરુષક બાંડાગાર દર્શિકા સૂચિ
- (૨) સર્થપુરનો સુવર્ણયુગ થાને સુરતનો નૈન ધતિહાસ
- (૩) સર્થપુર રાસમાલા

આ ત્રણ પુરુષકાલો સેટ, પોસ્ટેજ રેઝિન્યુ ૦-૮૦૦ મોકલવાથી નીચેના સ્થળોથી બેટ મોકલવામાં આવે છે.

લખોઃ—શા. ભાઈચંદ્ર છોટુભાઈ
એ. સેકેટરી:—શા. અગનલાલ પ્રતાપચંદ્ર નૈન લાયબેરી
ગોપીપુરા—સુરત.

નિહુનવવાદ

લેખક:—મુનિરાજ શ્રી ધુર્વરવિજયજી

ભીજ નિહુનવ તિથ્યગુમાચાર્યઃ આત્મવાદઃ સ્યાદાદી અને બૌદ્ધની ચર્ચા

(ગતાંકથી ચાલુ)

સ્યાદાદીએ બૌદ્ધને આત્મા સિવાય અનેક વસ્તુઓ છે તે તથા આત્મા પણ કેવલ જ્ઞાનસ્વરદ્ધઃ છે, એમ નહિ પણ જેમ જ્ઞાન સ્વરદ્ધ છે તેમ સુખરસ્વરદ્ધ, અળસ્વરદ્ધ, જ્ઞાનતો આશ્રય, બળનો આશ્રય, એમ અનેક ગુણો સ્વરદ્ધ અને અનેક ગુણોનો આશ્રય છે તે સિદ્ધ કરીને આત્માને વિવિધ પ્રકારનો સિદ્ધ કરી અતાયો। આજે મળેલ સભામાં આત્મા અનિત્ય છે, એ સિદ્ધ કરવાને બૌદ્ધ ચર્ચાનો આરંભ કરે છે.

બૌદ્ધ-સર્વ ક્ષણિક છે માટે આત્મા પણ ક્ષણિક છે—જગતમાં વિજ્ઞાન એક જ પદાર્થ છે, એમ માનો કે વિજ્ઞાન સિવાય ધર્મ પટ વગેરે અનેક પદાર્થો છે એમ માનો; આત્મા કેવાં વિજ્ઞાન સ્વરદ્ધ છે એમ કહેને કે અનેક પ્રકારનો છે એમ કહેને; પરંતુ જે કંઈ છે તે સર્વ ક્ષણિક છે એટલે કે—યત્ સત્ત તત્ ક્ષણિકમ—જે કંઈ સત્ત છે તે સર્વ ક્ષણિક—એક ક્ષણું જ રહેવાવાળું અને બીજું જ ક્ષણે નાશ પામનારું છે. માટે આત્મા પણ એક ક્ષણું રહેવાવાળો અને બીજે ક્ષણે નાશ પામનારો—અનિત્ય છે.

સ્યાદાદી-પ્રમાણું સિવાય કંઈ પણ માની શકાય નહિ—કોઈ પણ વિચાર કે કોઈ પણ પદાર્થ પ્રમાણું સિવાય સિદ્ધ થતો નથી, કે માની શકતો નથી. જગતું યા આત્મા એક ક્ષણું રહેવાવાળા અને બીજે ક્ષણે નાશ પામનારા અનિત્ય છે એ પણ પ્રમાણું સિવાય માની શકાય નહિ. એમ માનવાને કોઈ પણ પ્રમાણું જણાતું નથી. એટલે આત્મા અનિત્ય-એક ક્ષણું પછી બીજે ક્ષણે નાશ પામે—એ પણ માની શકતું નથી.

બૌદ્ધ-સર્વ ક્ષણિક છે એ પ્રમાણું સિદ્ધ છે. સર્વ પદાર્થ ક્ષણિક છે તે માનવાને કોઈ પણ પ્રમાણું નથી માટે ન માનતું એમ જે તમે જે કહો છો તો તે માટે નીચેનાં પ્રમાણું છે તે સંલંઘો:—

ધર્મ:પટ વગેરે પદાર્થો નાશને પામે છે, સહાકાળ રહેતા નથી, તે પ્રત્યક્ષ દેખાય છે. હવે જ્યારે ધર્મપટ વગેરે પદાર્થો ઉત્પન્ન થયા ત્યારે તે નાશ થવાના સ્વભાવવાળા ઉત્પન્ન થયા છે કે સહાકાળ રહેવાના સ્વભાવવાળા ઉત્પન્ન થયા છે? જે સહાકાળ રહેવાના સ્વભાવવાળા ઉત્પન્ન થયા હોય તો તે કહી પણ નાશ પામવા ન જોઈએ. પ્રત્યક્ષ જણાય છે કે ધર્મપટ વગેરે નાશને પામે છે. માટે સહાકાળ રહેવાના સ્વભાવવાળા નથી. હવે નાશ થવાના સ્વભાવવાળા ઉત્પન્ન થયા છે તો તેમાં તેઓ એક ક્ષણું રહીને બીજે ક્ષણે નાશ થવાના સ્વભાવવાળા છે? જે અમુક નિયત કાળ રહીને પછી જ નાશ થવાવાળા ઉત્પન્ન થયા હોય તો જે કાળ નિયત થયે છે તેટલા કાળ સુધી તે પદાર્થો અબધય રહેવા જ જોઈએ, વચ્ચમાં તેના નાશને માટે પ્રયત્ન

करवामां आवे तो पणु तेना नाश न थवो ज्ञेय, परंतु तेम अनतुं नथी. गमे ते पदार्थ गमे ते अनियत समये नाश थतो जेवामां आवे छे. भाटे अमुक पदार्थ अमुक नियत काण सुधी रहेवो ज ज्ञेय ए संलब्धतुं नथी. ऐट्ले जगत्मां रहेवा दृष्टे पदार्थी एक क्षण रहीने भीने क्षणे नाश थवाना स्वभाववाणा छे ए सिद्ध थाय छे. एयो सिद्ध थयुं के धरपट वगेरे सर्व पदार्थी क्षणिक-ऐक क्षण रहीने भीने क्षणे नाश पामनारा-छे, ते प्रमाणु सिद्ध छे. जेवा धरपट छे तेवो ज आत्मा छे भाटे आत्मा पणु क्षणिक-ऐक क्षण रही भीने क्षणे नाश पामनारा-छे. ऐट्ले यत् सत् तत् क्षणिकम् ए अप्राप्ति, प्रमाणुसिद्ध सिद्धांत छे भाटे भानवो ज्ञेय.

स्थादाहि-कारणु विना कार्य अने नहि भाटे क्षणिक वाह मिथ्या छे. जे प्रमाणुथी सिद्ध करवामां आवे छे के— सर्व पदार्थी क्षणिक छे. परंतु ते प्रमाणुथी ते भराअर सिद्ध थाई शक्तुं नथी. कारणु के धर पट वगेरे पदार्थी नाश पामे छे ते अराधर छे. तेयो नाश स्वभाववाणा उत्पन्न थया छे ते पणु अराधर छे. परंतु डाइ पणु कार्य कारणु विना अने ज नहि “नाश” ए पणु ऐक कार्य छे. ज्यारे नाशने अनुकूल कारणो भणे त्यारे ज नाशदृप कार्य थाय, परंतु ज्यासुधी ते कारणे न भणे त्यासुधी ते कार्य थाय नहि ऐट्ले धरपट वगेरे पदार्थी अमुक नियत समय सुधी रहेवावाणा ज उत्पन्न थया छे के ऐक क्षणे रहीने भीने ज क्षणे नाश थवावाणा छे. एम कंध नथी. परंतु ज्यां सुधी तेने नाश करनार हेतुओ न भणे त्यां सुधी ते रहेवाना स्वभाववाणा छे. अने नाश थवाना हेतुओ भणे ऐट्ले नाश पामवावाणा छे. भाटे धरपट वगेश्वे ऐक क्षण पछी भीने क्षणे नाश पामनारा क्षणिक भानी शक्तय नहि. वजो आत्मा तो विकाण स्थायी नित्य छे. ऐट्ले तेने तो सर्वथा क्षणिक भानी शक्तय ज नहि भाटे यत् तत् सत् क्षणिकम् ए नियम भाननीय नथी.

औद्ध-दृष्टे पदार्थीना दृष्टे क्षणे नाश काणथी थाय छे. कारणु सिवाय कार्य न अने ए सत्य छे. अमे जे कहीये छाये के-दृष्टे पदार्थी दृष्टे क्षणे नाश पामे छे ते पणु कारणु सिवाय कहेता नथी. नाश थवाना अनेक हेतुओ छे. तेमां काण पणु नाशनु ऐक कारणु छे. **ज्ञेयः-धरपट वगेरे पदार्थीना नाश मुशक भारवाथी अभिमां भागवाथी** के प्रण उपवातथी जेवामां आवे छे. परंतु उपरनुं ऐक पणु नाशनुं कारणु ज्ञेने प्राप्त न थयुं होय तेनो पणु डेट्लेक काणे नाश देखाय छे. डाइ पणु कारणु सिवाय पड्या पड्या जे वस्तुनो नाश थाई ज्य छे. ते नाश कारणु सिवाय थयो छे एम भानी शक्तय ज नहि. भाटे ते नाशनुं डाइक कारणु अवश्य भाननुं ज ज्ञेय. ते कारणु काण ज भानी शक्तय, अन्य डाइ संलब्धी रहेके नहि. ज्यारे नाशनां अनेक कारणोमां काण पणु नाशनुं कारणु छे ए सिद्ध थयुं ऐट्ले दृष्टे पदार्थी दृष्टे क्षणे नाश पामे छे. ते कारणु सिवाय थयुं न कहेवाय. कारणुके-काण नामनो नाशक पदार्थी दृष्टे क्षणे होय ज छे. ऐट्ले सिद्ध थाय छे के-नाश स्वभाववाणा धर पट वगेरे पदार्थी उत्पन्न थया पड्या काण नामना नाशक पदार्थी ज भीने क्षणे नाश पामे छे. ऐट्ले तेयो ऐक क्षण रहेवावाणा क्षणिक छे. आत्मा पणु विकालस्थायी नित्य संलभी शक्तो नथी., जे ते विकालस्थायी नित्य होय तो दृष्टे वर्षते ऐक

अंक ५]

निष्ठनवाह

[२१३]

सरणो ज देखावो जेघाए, परंतु ते प्रभाणु जग्यातु नथी, काई वभत पशुरपे तो काई वभत पक्षी स्वइपे, काई वभत हेवडपे तो काई वभत भाणुसइपे ऐम अनेक इपो जेवामां आवे छे. ऐटले ते पशु नाश स्वलाववाणो एक क्षण स्थायी भीजे क्षणे भीजइपने पाभवावाणो अनित्य छे. ऐटसे यत् सत् तत् क्षणिकम् ए मानवु जेघाए.

स्याद्वाही-काणने जो नाशक भनाय तो जगत् संलवे नहि—दरेक पदार्थो हरेक क्षणे नाशने पामे छे. ते भाटे काण नामना पदार्थने कारण भानी कारणकारणुलावनी व्यवस्था करवामां आवे छे. परंतु ते व्यवस्था संलवी शक्ती नथी, कारणु के—दरेक काण हरेक पदार्थने नाशक भानवामां आवे ऐटले हरेक पदार्थनो एक क्षणे नाश थर्च जय. ज्यारे हरेक पदार्थो विनाशने पाम्या ऐटले जगतमां आ सर्व के देखाय छे ते देखावु न जेघाए. कारणु के जे कंध हुते सर्वनो नाश थर्च गयो भाटे हरेक काण हरेक पदार्थनो नाशक भानी राकाय नहीं. ज्यां नाश स्वलाववाणा पदार्थने नाश करनार भीज काई कारणु संलवतां नथी तां ज काणने विशेषे नाशक भनाय छे. ऐटले सर्व क्षणिक छे ए कदी पशु संलवी शक्तु नथी.

बौद्ध-जेम काण नाशक छे तेम उत्पादक पशु छे—दरेक क्षणे हरेक पदार्थनो काण नाश करे छे ते भानवाथी एक क्षणे अधा पदार्थनो विनाश थर्च जरो ने तेथी देखाता जगतना सर्व पदार्थो भिथा थर्च जरो, भाटे काणने नाशक भानवो नहीं ऐम रहीने क्षणिकवाहनु अङ्गन उरो छो ते ठीक नथी. कारणुके-जेम काण हरेक पदार्थनो नाश करे छे तेम ते पदार्थने उत्पन्न पशु करे छे. ऐटले जे क्षणुमां सर्व पदार्थोनो जे काण नाश रही ते ज क्षणुमां तेना सहश भीज पदार्थो काणे उत्पन्न पशु कर्या छे. ऐटले जे आ जगत् देखाय छे तेनो असंलव नही थाय भाटे सर्व क्षणिक छे एम भानवु जेघाए.

स्याद्वाही-काणने नाशक भनाय तो अनवस्था-जगतही व्यवस्था साचववा भाटे अने क्षणिकवाह सिद्ध करवा भाटे काणने नाशक अने उत्पादक भानो ऐटले कहाय जगतही व्यवस्था संलवरो, परंतु तमारे जे सर्व क्षणिक छे तेथी काण पशु आवा.गयो. ते काणने जे अधाने नाश करवाने अने उत्पन्न करवाने नित्य भानशो तो सर्व क्षणिक छे ए सिद्धान्तनी रहनि थरो अने काणने पशु क्षणिक भानशो तो तेनो नाश करनार भीजे काण अने भीज काणने नाश करनार नीजे काण ऐम काणनी अवस्था ज नहि आवे भाटे सर्व पदार्थो क्षणिक छे ए भानी राकाय नहीं.

बौद्ध-काण स्वयं उत्पन्न थाय छे अने नाश पामे छे. काण सर्व पदार्थोनो नाश करे छे. परंतु ते काणने नाश करवाने भीज काणनी जडर नथी. काणनो आवे स्वलाव ज छे के, ते एक क्षण रहीने भीजे क्षणे नाशने पामे छे. अने भीजे काण उत्पन्न थर्च जय छे. ऐटले काणने नित्य भानी क्षणिकवाहनो व्याधात नथी थतो. अथवा एक काणनो नाशक भीजे काण अने तेनो नाशक नीजे काण ऐम अनवस्था पशु नथी थती. वणा जे तमे ऐम कंडेशो के काण स्वयं नष्ट थाय छे अने स्वयं उत्पन्न केम नथी थता तो ते पशु अभने धृष्ट ज छे. हरेक पदार्थोना पशु आवे ज स्वलाव छे के— एक क्षण रही तेना सहश भीजे

[२१४]

श्री जैन सत्य प्रकाश

[१८५]

पहार्द उत्पन्न करी ते भाने ज क्षेत्रे नाश पामे छे. ते प्रभाणे सर्व पहार्दो एक क्षण रहेवावाणा क्षणिक ले ए सर्वभान्य सुसिद्ध सिद्धांत छे.

स्यादाही-सर्वथा क्षणिकवाद भिद्या छे न कथचित् क्षणिकवाद स्यादाहीनो ज सिद्धांत छे.—घट पट वगेरे पहार्दो अमुक काळ पछी नाश पामे छे के नाश पछी आपाणे तेने पूर्व स्वइपमां ज्ञेऽशक्ता नथी. माटे दरेक क्षेत्रे थतो नाश अने पछीथी थतो नाश ए ऐमां शुं तद्वत छे के नेथी दरेक क्षेत्रे थतो नाश पछी। पण ते पहार्द पूर्व स्वइपे हेखाय छे, अने पछीथी हेखावो नथी. जे अने नाश एक सरभा ज होय तो प्रथम क्षण पधाना नाश पछी पण ते ज पहार्द ते स्वइपमां न हेखावो ज्ञेऽयो. अम क्लेशो के जे छेल्लो नाश थाय छे ते अने क्षेत्रे क्षेत्रे थतो नाशमां गेट्लो. ज हँड छे के छेल्ला नाशमां तेना जेवा ज भान स्वइप उत्पन्न [उत्सवानी शक्तिनो नाश थयो छे. अने क्षेत्रे क्षेत्रे थतो नाशमां ते शक्तिनो नाश थतो नथी. तो ते पण तमारे भते धरी शक्तुं नथी, कारणुके-तमारे भते सर्व क्षणिक छे. गेट्ले शक्तिनो पण दरेक क्षेत्रे नाश थया ज करे छे. पछी दरेक क्षेत्रे थतो शक्तिनो नाश अने छेवटनी शक्तिनो नाश ए ऐमां शुं हँड ? एना उद्धारने माटे पहेलानी जेभ क्लेशो तो पाणी अनवरथा थरो अने ज्ञे अम भानता हो के दरेक पहार्दनो दरेक क्षेत्रे जे नाश थाय हँड ते कंधुक अंशे थाय छे, अने छेवटे जे नाश थाय हँड ते सर्वथा थाय छे तो ते अमने पण धृष्ट हँड छे. स्यादाहीनो तो ए ज मत छे के—दरेक पहार्दनो दरेक क्षेत्रे कथचित् नाश कथचित् उत्पत्ति अने कथचित् सत्ता होय ज छे. माटे दरेक पहार्द माटे, दरेक पहार्द दरेक क्षेत्रे सर्वथा क्षणिक छे, ए सिद्ध थतुं नथी. माटे ते स्यादाहीने भान्य नथी. कथचित् नाश उत्पत्ति अने सत्तावाणा आत्मा पण स्यादाही भाने छे, परंतु सर्वथा क्षणिक भान्य नथी, अने सर्वथा क्षणिक भानवामां अनेक होपो आवे छे. ते होपो क्या अने डेवी रीते छे ते आगामी सभामां स्यादाही समग्नवरो.

(चालु)

समाचार

प्रतिष्ठा—पिचियांडी (भारवाड)मां भागसर सुही ६ पू. पं. श्री. हिम्मतविजयलू गण्डुओं ग्रामियां प्रतिष्ठा करी.

दीक्षा—इलोही (भारवाड)मां भागसर सुही ६ पू. पं. श्री. विजयलूष्मिधसूरिज्ञुओं एक भाधने दीक्षा आपी. दीक्षितनुं नाम सु. श्री. रमणिकविजयलू राखोने तेमने पू. पं. श्री. विजयगंभीरसूरिज्ञना शिष्य अनाव्या.

स्वीकार

१—२ आरामसोहाकहा तथा पंडिअध्यनबाल कहा (श्री संघतिलाकाचार्यकृत)-संपादक-मुनिराज श्री यशोभद्रविजयजी, प्रकाशक-बडा चौदा जैनसंघ, सुरत, गेट

३ श्री. हेमचन्द्राचार्य (सचिव)-लेखक—(गूजरातना प्रसिद्ध साक्षर) श्री. धूमकेतु, प्रकाशक—श्री. आत्मानंदशताण्ड ग्रंथमाणा, प्राप्तिस्थान-गुर्गर ग्रंथगतन कार्यालय, गांधी रोड, अमदाबाद. मूल्य—दोह इपियो.

श्री दाणकुलकम्

कर्ता—आचार्य महाराजा श्री विजयपद्मसूरिनी
(गतांकथी चालु)

इकासीइसमेप, दुसप विगप य वीरनिवाणा ।
उवपसा अज्ञसुह-तथीणं लङ्णो निवो जाओ ॥ ३८ ॥
रज्ञाहिसेयकिरिया, तिसप एगाहिप य वरिसाणं ।
नवसंजुते राप-सरो, तिखंडस्स सो जाओ ॥ ३९ ॥
तक्कोहुंबियभव्या, संजाया दिक्खिया महागुणिणो ।
धण्णं सलाहणिज्ञं, जम्मि कुहुंबम्मि दिक्खा तं ॥ ४० ॥
सत्तरसुत्तरतिसप, पत्तो सगं च थुलिभद्धस्स ।
दो सीसा अज्ञमहा-गिरी सुहत्थी तहा अज्जो ॥ ४१ ॥
तेसुं सुहत्थिगुणो, दिक्खियगवीसाहिप य सयज्जयले ।
समइकंतेऽहाणं, पण्यालीसाहिप दुसप ॥ ४२ ॥
वरिसाणं संजायं, जुगप्पहाणतं सुहत्थिस्स ।
तस्स करेण जाया, अवंतिसुकुमालपव्वज्ञा ॥ ४३ ॥
संभवइ तीइ समओ, दुसया तेवत्तरिष्पउत्ताओ ।
दुसयं पक्कासीइं, जा ताणं मञ्ज्ञयालम्मि ॥ ४४ ॥
गच्छुं समपित्तुणं, सुप्पडिवद्धस्स सुट्टियस्स तहा ।
एगणवइज्ञयदुसप, छहिणछहमाससंजुतं ॥ ४५ ॥
आऊं परिपालिता, वरिससयं से सुरत्तमावणो ।
कोडियगच्छुप्ती, तिसप सिरिवीरनिवाणा ॥ ४६ ॥
पणवीसडुसयंगुह-मियणेमिजिणिद्विबमुण्णइयं ।
सिरिहेमस्त्रिवयणा, कुमारपालेण कारवियं ॥ ४७ ॥
चउवीसा चउवीसा, रयणाइमयाउ भव्यपडिमाओ ।
कारविया खणियतं, धणस्स णचा महुलासा ॥ ४८ ॥
गुणिवत्थुतेयपाला, सवायलक्खं पहूण एडिमाणं ।
कारावीअ तईया, अंगीभूसापइट्टाई ॥ ४९ ॥
रज्ञावत्थासरणे, जुतं गी माववुड्डिथिज्जयरी ।
चितामणिव्व पूया, दुहावहा सगगमुत्तिद्या ॥ ५० ॥
अच्चा न विणाहारं, होज्जा पडिमाण तंजिणगिहाइ ।
णायागयधणधणिया, कारिते ते दुहा भणिया ॥ ५१ ॥
सद्धाइं सोहिता, जयणाप सित्पिसुत्तहाराई ।
कारेति तोसितुणं, अज्ञा भरहाइभवनिहा ॥ ५२ ॥
सोवणकुट्टिमयले, रथणसिला जोइऊण ठावेते ।
सोवाणभव्यसेढी, मणिमयथंभे पदिष्पते ॥ ५३ ॥

(अपूर्ण)

‘मालपुराना केटलाक शिलालेखो’ शीर्षक लेखके विषयमें संशोधन

लेखक—श्रीयुत पन्नालालजी दुगड़

‘मालपुराना केटलाक शिलालेखो’ इस शीर्षकसे पक लेख ‘श्री जैन सत्य प्रकाश’ क्रमांक ५८में पृ. मु. श्री ज्ञानविजयजीका प्रकट हुआ है। माल-पुरेमें पेतिहासिक खोज होनेका मुझे बहुत ही ख्याल था, क्योंकि ‘जगद्गुरु श्री हीरविजयसूरि’ पुस्तकमें यह सब वर्णन सप्रमाण देनेके हैं। अतः जब पू. दर्शविजयजी आदि त्रिपुटी जयपुर पधारी तो मैंने उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया। हर्षका विषय है कि उन्होंने मालपुरे पधारकर वहांके लेख बढ़े परिश्रम और कठिनाईसे ग्रहण किये (यदि वे इस दृढ़ता, साहस और चतुराईसे काम न लेते तो वहांके लेखोंका उत्तर आना सुलभ नहीं था) उन लेखोंके विवेचनमें हुइ स्वल्लनाओं पर प्रकाश ढालनेसे पहिले उपाध्याय श्रीभानुचन्द्रजी और ‘खुशफहम’ व ‘नादिरेजमा’ विरुद्धधारी श्रीसिद्धिचंद्रजी मालपुरा कव कव पधारे और क्या क्या कार्य किया उसका संक्षिप्त सप्रमाण इतिहास यहां देता हूँ—

(१) ‘श्रीविजयनिलकस्त्रिरास’ प्रथम अधिकार (रचना सं. १६७९), कड़ी ४२८ से ४४६ तक उल्लेख है कि जिस समय (हिन्दी) सं. १६७०में श्री विजयसेनस्त्रिका चौमासा नवानगरमें था उस समय जहांगीर वेवधारियोंपर कुपित हुआ था और उसने देशनिकालेका हुक्म दिया था। उस समय सुरत और खंभातके हाकियोंकी दयालुताकी बजेहसे अनेकानेक साधुओंका बुलाकर उन्होंने आश्रय दिया था। उनमेंसे कुछके नाम भी दिए हैं। और तो क्या स्वयं रासकार श्री मुनिविजयबाचकके शिष्य श्री दर्शनविजयजीको भी चौपड़ासे सुरत आना पड़ा था। अतः इससे यह वर्णन पूर्ण प्रामाणिक और विश्वसनीय है एवं उक्त घटनाके केवल ९ वर्ष पश्चात् ही यह रचा गया है। ‘विजयप्रशस्ति’ काव्य और उपाध्याय श्रीमेविजयजीकी पट्टावलि आदिसे यह प्रमाणित है कि उक्त समयमें श्रीविजयसेनस्त्रिका चौमासा अवश्य ही नवा नगरमें था। अतः ‘श्रीभानुचन्द्रचरित’के उल्लेखानुसार श्रीसिद्धिचंद्रजी मालपुरेमें इस विपत्तिके समय (हिन्दी) सं. १६७०में आनकर रहे थे। ऊपरकी एक टिप्पनीमें ‘श्रीभानुचन्द्रचरित’में सं. १६६७में जानेके बाद पांच चौमासे करनेका उल्लेख अवास्तविक होनेका एक और भी प्रमाण है कि—इस रासमें गुजराती सं १६७२ वैशाख सुदि १३ (१०१६)* के गीछे इसी संवतकी घटनाओंके अन्यान्य

* मुनिराज श्री विद्याविजयजीने इसके निरीक्षण पृ. २१में जो भूल प्रदर्शित की है वह अवास्तविक है, क्योंकि यह उल्लेख गुजराती गणनासे लिखा है और इसी गणनासे श्री विजयसेनस्त्रिका स्वर्गवास सं १६७१ ज्येष्ठ सुदि (या वदि) ११ को हुआ है।

उल्लेखांके साथ यह भी लिखा है कि मुकर्बखां जहांगीरका फर्मान लेकर गुजरात जा रहा था तो रास्तमें जालोरमें लब पहुंचां तो उपाध्याय श्री भानुचंद्रजी उससे जाकर मिले और श्री सिद्धिचंद्रजीको उसके साथ अहमदावाद भेजा। अहमदावाद पहुंचनेपर वे उपाध्याय श्री सोमविजयजीसे मिले। सोमविजयजी सिद्धिचंद्रजीसे इस प्रकार कहते हैं—

“सावासी कोविद सिद्धिचंद्रनइं, बिहुं ठामे धरी टेक।
आप राखी कीधुं अजुआलुं, मोटो एह विवेक ॥ ११७९ ॥
एक दिन दुसमन प्रेरिओ राजा, सिद्धिचंद्र प्रति भासई ।
तरुणपणा तुझ दीसई, अधिका नहीं फकीराई वरासई ॥ ११८० ॥
धरि दुनियां हथ गय तुझ आयुं, आयुं मुलक बहुत ।
निसुणी वात अवनीपतिकेरी, चिंतई रहई किम सूत ॥ ११८१ ॥
कहई तव सिद्धिचंद्र विचारी, अवनीपति अवधारो ।
जे जेरई अंगीकृत कीधुं, ते न टलई किरतारो ॥ ११८२ ॥

—इत्यादिक वर्णनमें आगे लिखा है कि जब सिद्धिचंद्रजीने जहांगीरकी बात न मानी तो हाथी आदिके अनेक भय दिखलाए गए, परन्तु वे अपने व्रतसे चलित न हुए तो फिर पास बुलाकर शावासी दी और सन्मानित किया और चुगलखोरोंको उचित दण्ड दिया। इस प्रकारसे एक बार तो सिद्धिचंद्रजीने वहां टेक रखी थी। इससे स्पष्ट है कि उक्त समयके पहिले उनकी परीक्षा हो चुकी थी, जोकी हिन्दी सं. १६७०में ही हुई प्रमाणित होती है, क्योंकि उसके पहिले माननेमें २३ वर्षके पश्चात दो चौमासे गुजरातमें भी तो किये हैं और पीछे माननेमें जहांगीर आगरेसे अजमेर चला गया था। अतः इस रासमें इस घटनाका सं. १६७० लिखना सत्य है। मुंशी देवीप्रसादके ‘जहांगीरनामा’ पृ० २२९-२३१से जान पड़ता है कि हिन्दी सं. १६७३ के प्रथम असोज के प्रारंभमें मुकर्बखांको गुजरातकी स्वेदारी मिली और इस मासके अंतमें वह अहमदावादके लिए रवाना हो गया। अतः रासमें उपाध्यायजीसे मुलाकात होना सप्रमाण सिद्ध होता है। जालोरमें चौमासा करनेका उल्लेख ‘श्रीहीरविजयसूरिरास’ में भी है, जोकि आगे दिया है।

(२) ‘श्रीहीरविजयसूरिरास’ पृ० १८४में उपाध्यायजी जहांगीरके पाससे कहां गए उसका वर्णन देते हुए लिखा है कि—

“अनुकरमि आव्या मालपुरि गया, वीजामतीस्युं बाद रे ।
जस हुओ तिहां भाणचंदनि, कीधो एक प्रासाद रे ॥ ९ ॥
कनकमि कलस चढावीओ, करी विव० प्रतिष्ठ रे ।
पछि माहआडिमां आविआ, हवी सोबन वृष्टि रे ॥ १० ॥

[२१८]

श्री जैन सत्य प्रकाश

[वर्ष ६

जालोरे चौमासुं रद्या, हुई सबली जगीस रे ।
सुणी आवक दीक्षा लेय, जणां तिहां पकवीस रे ॥ ११ ॥

इस अवतरणसे यह बात साफ प्रकट है कि जैसाकि ऊपर बतलाया जाचुका है कि हिन्दी सं. १६७३का चौमासा उपाध्याय श्रीभानुचंद्रजीने जालोरमें किया था तो वे पहिले मालपुरे और मारवाड होकथ फिर जालोरमें आए थे । परिणामतः वे मालपुरेमें हिन्दी सं. १६७२-७३में भी आए, जैसाकि मुनिराज श्रीज्ञानविजयजी महाराजके प्रकट किए हुए लेखोंसे भी सिद्ध है, किंतु उन लेखोंके विवेचनमें कुछ स्थलनायं हो गई हैं अतः मैं यहांपर श्रीमुनिसुव्रतस्वामीके मंदिरके प्रत्येक लेखसे क्या विशेष प्रकट होता है ? उसका संक्षिप्त विवरण देता हूँ—

(१) पहिला लेख मूल गंभारेकी कुंभों के ऊपर एक श्याम मकरानेके चार फुट लंबे और एक बालिश्त चौडे पत्थरमें खुदा हुआ है जोकि श्री विजयसेनस्त्रिरजीकी विद्यमानताका, मंदिर बनते समय हो खुदवाकर लगवा दिया गया प्रतीत होता है और उसमें (हिन्दी गणनासे) सं. १६७२ लिखा है अतः ‘पंजाब जैनधर्म’ विषयक लेखके संशोधन (‘श्री जैन सत्य प्रकाश’ क्रमांक ६२ पृष्ठ ८१) में कहा गया है कि उपाध्याय श्रीभानुचंद्रजीका भी चौमासा जंहांगीरके साथमें था । इस लेखसे प्रकट है कि श्रीसिद्धिचंद्रजी तो अवश्य उस पहिलेसे ही मालपुरेमें आ गए थे और उन्होंने मंदिरके बास्ते भूमि ग्रहण करके उक्त मंदिर बनवाना प्रारंभ करवा दिया था और यह निश्चित कर लिया गया था कि इसमें मूलनायक श्रीचंद्राप्रभुजी विराजमान किए जावेंगे । श्री सिद्धिचंद्रजीको समारू अकबरने ‘खुशफहम’ की उपाधि तो दी थी ही साथमें दूसरी भी कोई उपाधि प्राप्त हो चुकी थी* । प्रश्नस्तिलेखक श्री लालचन्द्र गणि संभवतः उपाध्याय श्री शांतिचंद्रजीके जो एक इस नामके शिष्य थे वही हों । (देखो—‘जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास’ टिप्पणी ४९४में उद्धृत शब्दरूप वाक्यकी प्रश्नस्ति) ।

(२) दूसरा लेख सं. १६७८ मार्गशीर्ष सुदि २ सोमवारका इस मंदिरके मूलनायक श्रीचंद्रप्रभुजीके परिकरका है, जिसका आवश्यक अंश इस प्रकार है—
“श्री चन्द्रप्रभमूर्तिमुख्यपरिकरः कारितः प्रतिष्ठापितश्च ॥ श्रीरस्तु ॥
पं० श्रीज्ञयसागरैः ॥

* दूसरी उपाधि जहांगीरने उक्त परीक्षामें अपने साधुधर्ममें निश्चल रहनेके कारण प्रसन्न होकर ‘नादिरेजमा’ की दी थी (लेखलेखनपद्धति) को प्रश्नस्ति) देखो ‘आत्मानंद’ वर्ष ४ अंक ८ पृ० २२-२३ में ‘मुगल समारू अकबर पर जैनाचार्योंका प्रभाव ’ शीर्षक लेखान्तर्गत ।

अथे ५]

संशोधन

[२१६]

इतना स्पष्ट उल्लेख होनेपर भी मुनिश्रीका यह विकल्प करेना कि—“सं. १६७८में मूलनायकजीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा न भी हुई हो (श्री जैन सत्य प्रकाश वर्ष ५ पृ. ३५९) अथवा सं. १६७८में चन्द्रप्रभ जिनप्रासादमें श्री चन्द्रप्रभुजीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा हुई उसकी खात्री इस (परिकरके) लेखसे होतो है (पृ. ३६१)” ठीक नहीं है। क्योंकि यदि यह परिकर बादमें न बनवाकर प्रतिष्ठित कराया गया होता तो इसमें—“श्री चन्द्रप्रभमूर्तिमुख्यपरिकरः कारितः” यह शब्द न होते, बल्कि ‘सपरिकर’ शब्द होता जैसाकि खास श्रीविजयदेवसूरिके ही अन्य लेखोंमें मिलता है:—

(अ) “...स्वथेयसे स्वकारितरंगदुत्तंगशिखरबद्धं श्री ऋषभदेवविहारमंडनं सपरिकरं श्रीआदिनाथविंशं कारितं प्रतिष्ठापितं च...।” [मेडतामें डानियोंके मुहल्लेमें श्रीआदिनाथके मंदिरके मूलनायकजीका सं. १६७७ वैशाख सुदि ३ का लेख]

[आ] “...स्वद्रव्यकारितनवलाख्यप्रासादोपरि श्रीपार्वनाथविंशं सपरिकरा ...”। [पालीमें नवलखा मंदिरके मूलनायक श्री पार्वनाथजीका सं. १६८८ वैशाख सुदि ८ का लेख]

— (देखो श्रीमान् जिनविजयजीका लेखसंग्रह भा. २ तथा बाबू पूरण-चन्द्रजी नाहरका जैन लेख संग्रह प्रथम खण्ड ले. ७५०-८२५)।

इन उदाहरणोंसे सिद्ध है कि उपाध्यायजीने सं. १६७८में अवश्य ही मूलनायक श्री चन्द्रप्रभुजीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा की थी, जैसा कि ‘श्रीहीरविजयसूरिरास’ के उद्घृत अवतरणमें साफ लिखा है। परिकरके प्रतिष्ठापक पं. श्रीजयसागरजी, श्रीआनन्दविमलसूरिके उपाध्याय श्रीविद्यासागरजीके शिष्य पं. सहजसागरजीके शिष्य थे जैसा कि उन लेखोंसे प्रकट है जो ‘श्री जैन सत्य प्रकाश’ क्रमांक ६० पृ० ३४९-४४० में भी अब प्रगट हो गए हैं×।

(३) तीसरा लेख जगद्गुरु श्री हीरविजयसूरिजीकी मूर्तिका सं १६९० जेठ वदि ११ गुरुवारका है। इस मूर्तिके विराजमान करनेसे प्रगट होता है कि उक्त सूरिजीकी उपासना स्थान स्थान पर बढ़ती जाती थी।

(४) चौथा लेख वर्तमानमें मूलनायक श्री मुनिसुवतत्वामीका सं. १६९१ वैशाखसुदि १२ गुरुवारका गुजराती गणनाका है। इससे यह तो प्रगट ही है कि प्राचीन मूलनायकजीके अभावमें अथवा उन्हें बदलाकर यह भवोन

× मेरे पास पूज्य मुनिराज श्रीदर्शनविजयजी आदि त्रिपुठीने माल-पुरेके लेखोंको सक्षिप्त नोटें गत प्रिल मासमें भेजी थीं उसके उत्तरमें मैंने इन्हीं लेखोंके आधारसे उन्हें भी यह लिख दिया था।

[२२०]

श्री जैन सत्य प्रकाश

[वर्ष ६]

मूलनायकजी बीजामतिके श्रीपूज्यजीके उपदेशसे मंदिर (बडा) बनवाकर विराजमान किये गए। परन्तु तपागच्छके मंदिरमें प्रतिष्ठा तो उसीके आचार्य श्री विजयदेवसूरिजीके आज्ञानुवर्ती पं. लघिधचन्द्र गणिने की। मालपुरा तपागच्छका केन्द्र रहा है, वहां पर तपागच्छके साथु बहुधा चौमासा किया करते थे। [देखो 'श्री जैन सत्य प्रकाश' क्रमांक ५१ पृ. १२६-२७ में प्रकाशित 'बांधणी पट्टक']

टिप्पणी-यदि पं. लघिधचन्द्र गणिका कहाँ विशेष परिचयमिलता हो तो सुझ पाठक वह मुझे सूचित करें।

(५) पांचवां लेख उस धातुमूर्तिका श्रीसुमतिनाथजीका गुजराती सं. १६७२ ज्येष्ठ सुदि ५ शुक्रवारका है जो कि अब विजयगच्छके श्रीआदिनाथजीके मंदिरमें विराजमान है। यद्यपि उसमें प्रकारान्तरसे कोई नाम अन्य प्रतिष्ठापकका सूचित नहीं किया है तथापि इनकी प्रतिष्ठा श्रीविजयदेवसूरिजीने न की होगी, बल्कि श्रीचन्द्रप्रभ जिनप्रासादमें जिस दिन उपाध्याय श्रीभानुचन्द्रजीने प्रतिष्ठा की उसी दिन उन्हींके साथमें इनकी भी प्रतिष्ठा उन्होंने की होगी। उत्तका इसमें नाम न होना कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि श्रीविजयदेवसूरिजीका हिन्दी सं. १६७२का चौमासा विसलनगरमें था, वहांसे वे पाटन आये थे, और सं. १६७३का चौमासा उन्होंने पाटनमें ही किया था (देखो 'श्रीविजयतिलकसूरिरास' कडी १०६८—११७२ तथा 'विजयदेवमाहात्म्य' सर्ग ९ श्लोक ३४ से ६५ तकमें उलेख है कि उक्त सूरिजीने पाटनमें सं. १६७३ माघ सुदि में श्रीकनकविजयजीको उपाध्याय पद दिया था)। पाटनवालोंकी सं. १६७२ माघ सुदि १३ को उन्होंने प्रतिष्ठा भी की थी (देखो-आचार्य श्रीबुद्धिसागरसूरिजीका 'जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह' भा० १ लेख २७२—२७४)। यदी मालपुरेवालोंने हिन्दी सं. १६७३ ज्येष्ठ सुदि ५ को पाटनमें जाकर उनसे प्रतिष्ठा करानेके अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध हों तो पाठक कृपया मुझे सूचित करें।

पेतिहासिक अनुसंधान द्वारा मुझे जो कुछ ज्ञात हुआ सो ही मैंने इस लेखमें लिखा है।

ठि. कटरा खुशालराय, देलही

નીચેના ત્રણ અંકો જરૂર ખરીદો

[૧]

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશનો ભીજે વિશેષાંક

શ્રી પદ્માબદ્ધ પર્વ વિશેષાંક

૨૨૮ પાનાના આ દળદાર સચિત્ર અંકમાં લ. મહાવીર સ્વામી
પણીના એક હજાર વર્ષના ઈતિહાસની અપૂર્વ સામની આપવામાં આવી છે.
મૂલ્ય [ટપાલ ખર્ચ સાથે] એક ડિપિયો.



[૨]

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશનો કલમાંક ૪૩મો

૬૦ પાનાના આ અંકમાં જૈન ધર્મની માંસાહાર વિષયક માન્યતા
યુક્તિ તેમજ શાસ્ત્રીય પ્રમાણ સાથે આપવામાં આવી છે.
મૂલ્ય [ટપાલ ખર્ચ સાથે સાથે] ચાર આના.



[૩]

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશનો કલમાંક ૪૫મો

આ અંકમાં કલિકાત્રસર્વજ શ્રી હેમચંદ્રાચાર્ય સંગાંધી
ઈતિહાસિક લેખો આપવામાં આવ્યા છે.
મૂલ્ય [ટપાલ ખર્ચ સાથે] ત્રણ આના.



—: લખો :—

શ્રી જૈનધર્મ સત્યપ્રકાશક સમિતિ

નેશિંગલાઇની વાડી, ધીકાંટા, અમદાવાદ

Shri Jaina Satya Prakasha

Regd. No. B. 3801

अऽधी किंभते भणरो

‘श्री जैन सत्य प्रकाश’ नो

श्री महावीर निर्णायु विशेषांक

ल. महावीर स्वामीना लक्ष्मण संघधी विद्वानेत्रे लगेला
अनेक देखोथी समृद्ध ३५० पानानो ढण्डार आंक

मूण किंभत बार आना

घटाडिली किंभत छ आना

[टपाल खर्च अंक आना वधु]



लगवान महावीरस्वामीन्

त्रिरंगी चित्र

इया अने शास्त्रीय दृष्टिग्रे सर्वांग सुन्दर चित्र
१४" x १०" ना शूष्कज सौनेरी बोर्ड



मूण किंभत आठ आना

घटाडिली किंभत चार आना

[टपाल खर्च दोड आना वधु]



श्री जैनधर्म सत्यप्रकाशांक समिति.

नेशंगलाघनी वाडी, वीकांसा-अमदाबाद.